"दो शब्द"

जयपुर

यह पुस्तक विशेष रूपसे जैनधर्म मे जैन तथा जैनेत्तर भाइयों को कुछ अनुराग उत्पन्न करने के लिये प्रस्तुत की गई है।

वार्षिक कार्तिक रथोत्सव नजदीक होने के कारण और समयाभाव के कारण बहुत सी सम्मतियाँ पुस्तक में संकलित नहीं की जा सकीं इसका मुझे खेद है।

पाठकगण! कृपया इस पुस्तक की त्रुटियों से मुझे सूचित करने का कष्ट करें जिससे पुनरावृत्ति में आवश्यक संशोधन किया जा सके। इसके लिये मैं उनका आभारी रहूंगा।

इस पुस्तक के तैयार करने में जिनवाणी प्रचारक कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'जैनधर्म पर लोकमत' ब्र० शीतलप्रसादजी कृत 'जैनधर्म प्रकाश' तथा श्री सुमेरचंदजी दिवाकर कृत "जैन शासन' आदि पुस्तकों से विशेष सहायता मिली है इसके लिये इन सब लेखक महोदयो का मैं ऋणी हूं।

श्री सेठ जुगमंदिरदास शीतलप्रसाद जी जैन ने अपना जो द्रव्य इस कार्य में लगाया तथा श्री कैलाश चन्द्र जी जैन एम० ए० ने इस पुस्तक के लिये जो सारगर्भित प्रस्तावना लिखने का कष्ट किया है उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं तथा पाठकों से निवेदन है कि वे प्रस्तावना को लक्ष में रख इस पुस्तक का उपयोग करें।

श्री दि० जैन युवक समिति,
[illegible] जिनपुर स्पर
ता-७

प्रस्तावना

श्री दिगम्बर जैन युवक समिति के मन्त्री श्री हिम्मत सिह जी जैन बी० कॉम० ने जैनधर्म पर जैन तथा जैनेत्तर विद्वानों तथा नेताओं की कुछ सम्मतियों का सग्रह कर जो "जैनधर्म पर लोकमत" नाम से यह पुस्तक प्रकाशित की है उनका यह प्रयास देश और काल की मांग के अनुसार अत्यन्त सराहनीय है।

जिस समय सस्कृतियों की आपस में मुठभेड़ होती है तो यह आवश्यक नहीं होता है कि सबसे उत्तम तथा वैज्ञानिक संस्कृति ही जनता द्वारा अपनायी जावे। इसका कारण है कि जब तक किसी धर्म व सस्कृति का साहित्य मन्दिरों के भडारों में भरा पड़ा रहेगा और विद्वानों को सुविधापूर्वक अध्ययन के लिये नहीं मिलेगा तब तक कौन जानता है कि वह धर्म व सस्कृति उत्तम है या नहीं और देश तथा काल की समस्याओं को सुलझा सकती है अथवा नहीं।

इतिहास के अधिक पन्ने उलटने की आवश्यकता नहीं। अपने ही समय में हम देखते हैं कि चीन की वह दीवार जो ससार की सर्वप्रथम सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में से है और जिसने मध्य एशिया की क्रूर से क्रूर जातियों से हजारों वर्ष तक चीन की भली भांति रक्षा की, आज चीन की बौद्ध सस्कृति को रूस की आधुनिक संस्कृति (साम्यवाद) के प्रहार से नहीं बचा सकी। इसका मुख्य कारण यही है कि यद्यपि बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध संस्कृति (साम्यवाद) के कुठाराघात को रोकने के लिये किसी प्रकार भी शक्तिहीन नहीं थी और मुझे विश्वास है कि देश और काल की परिवर्तन शीलता एक बार फिर इस संस्कृति को सीधी करवट लेने के लिये बाध्य करेगी, तथापि धर्म ग्रथों को अलमारियों में रखकर पूजना और बात है और उनके अनुसार आचरण करना और बात।

ऐसी दशा में मुझे तो साफ मालूम होता है कि चीन की यह दीवार तो शायद कुछ समय के लिये बौद्ध संस्कृति को सुरक्षित रहने भी दे सकी, परन्तु भारतीय संस्कृतियों के लिये तो ऐसी कोई भी चीन की दीवार नजर नहीं आती जिसके भरोसे हम दो दिन भी चैन से बैठ सकें।

यह आशा करना कि हमारा धर्म और हमारी संस्कृति मन्दिरों की अल्मारियों में रक्खे शास्त्रों में सुरक्षित रह सकेगी उसी प्रकार की आशा है जैसे यवनों से युद्ध करने में गायोंकी पंक्ति अपनी सेनाके आगे करके यह आशा करना कि हमारा धर्म तो आगे २ जाता है शत्रु के अस्त्र-शस्त्र स्वयं ही निरर्थक हो जावेंगे।

जैनधर्म और जैन संस्कृति की प्राचीनता, वैज्ञानिकता तथा वर्त्तमान समय में भी विश्व-कल्याण करने की योग्यता के विषय में आधुनिक नेताओं और विद्वानोंकी जो धारणाएं हैं उसका कुछ दिग्दर्शन इससे अवश्य हो सकेगा।

स्वतः सिद्ध है कि इस समय संसार को जैनधर्म की आवश्यकता है जो सब प्रकार के मिथ्या दर्शनों और दूर से सुहावनी लगने वाली परन्तु अंतमें संसारको महा विनाशकारी रास्ते पर ले जाने वाली कुसंस्कृतियों को खंडितकर अनेकांतवाद द्वारा सर्व संस्कृतियों के कल्याणकारी गुणों और विश्व कल्याण में बाधक दोषों की विवेचना करके सत्य मार्ग सब के सामने पेश कर सके।

ऐसी दशा में यदि हम जैन साहित्य का अधिकसे अधिक प्रचार नहीं करते और जैन तथा जैनेत्तर विद्वानों को सुगमता पूर्वक सब साहित्य अध्ययन करने की पूरी से पूरी सुविधाएं नहीं देते तो हम उन पूज्य तीर्थङ्करों तथा आचार्य्यों के प्रति विश्वासघात करते हैं जिन्होंने मनुष्य मात्र के लिये ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र के लिये इस वैज्ञानिक तथा कल्याण मयी धर्म की रचना की। हमारा कर्तव्य है कि हम इस धर्मका पालन स्वयं करें, दूसरों से कराएं तथा जो स्वयं ही इसका पालन करते हैं उनकी अनुमोदना करें उन्हें और उत्साहित करें।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस छोटी सी पुस्तक को पढ़ कर प्रत्येक पाठक के हृदय में यह भावना अवश्य उत्पन्न होगी कि वह स्वयं यह जानने का प्रयत्न करें कि विविध नेताओं तथा विद्वानों की सम्मतियां जो इसमें संग्रह की गई हैं कहां तक सत्य हैं और हमारी जैन समाज ऐसी गवेषणाओं के लिये इन विद्वानों को पूर्ण सहयोग देगी।

११ ए, सैय्यद साली लेन,
कलकत्ता—७

कैलाश चन्द्र जैन एम० ए०

जैन-धर्म पर लोकमत ।

जैन-धर्म का स्वरूप

मैं विश्वास के साथ यह बात कहूंगा कि महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी सिद्धान्त के लिये पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वे महावीर स्वामी थे।

—स्व० महात्मा गांधी

महावीर ने डिमडिम नाद मे भारत में ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म, यह केवल सामाजिक रूढ़ि नहीं हैं, किन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष, यह बाहिरी क्रिया काण्ड पालने से प्राप्त नहीं होता। धर्म तथा मनुष्य में कोई स्थायी भेद नहीं रह सकता।

—स्व० कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर

श्री महावीर जी के उपदेशों पर अमल करने से ही वास्तविक शांति को प्राप्ति हो सकती है। इस महापुरुष के बताये हुये पथ का अनुसरण कर हम शांति लाभ कर सकते हैं। आज का संघर्षशील और अशान्त संसार तो इस साधु पुरुष के उपदेशों पर ही चलकर सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद, अध्यक्ष विधान परिषद्

जैनों का अर्थ है सयम और अहिंसा। जहा अहिंसा है वहा द्वेष-भाव नहीं रह सकता है। दुनिया को पाठ पढाने की जवाबदारी आज नहीं तो कल अहिंसात्मक संस्कृति के ठेकेदार बनने वाले जैनियों को ही लेनी पड़ेगी।

—सरदार वल्लभ भाई पटेल, गृहमन्त्री भारत सरकार

हे अर्हन्! (जैनियों के पाच में से प्रथम परमेष्ठी) आप वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बालकों को, उपदेश रूपी धनुष को तथा आत्म चतुष्टय रूपी आभूषणों को धारण किए हो। हे अर्हन्! आप विश्वरूप प्रकाशक केवल

ज्ञान को प्राप्त हो। हे अर्हन्! आप इस संसार के सब जीवों की रक्षा करते हो। हे कामादि को रुलाने वाले! आपके समान कोई बलवान नहीं है।

—यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र १४

भगवान महावीर द्वारा प्रचारित सत्य और अहिंसा के पालने से ही संसार संघर्ष और हिंसा से अपनी सुरक्षा कर सकता है।

—श्रद्धेय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, मन्त्री, उद्योग विभाग, केन्द्रीय सरकार

जैनधर्म के अवलम्बन से निर्वाण प्राप्त होता है। यदि अन्य साधना के मार्गों से निर्वाण मिलता, तो मुक्त आत्माओं के विषय में वे भी स्थान, नाम, समय आदि का प्रमाण उपस्थित करते।

—स्व० विद्यावारिधि वैरिस्टर चम्पतराय

एकाकी निस्पृह शांतः, पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शंभो! भविष्यामि, कर्म निर्मूलनक्षमम् ॥

—भर्तृहरि

नाहं रामो न मे वाछा, भावेषु न च मे मनः ।
शान्ति मास्थातु मिच्छामि, स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

भावार्थ—न मैं राम हूं, न मेरी वाछा पदार्थों में है। मैं तो जिनके समान अपने आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूं।

—योग वाशिष्ट, अ० १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्रजी कहते हैं।

जैनधर्म की वैज्ञानिकता

अब तक जैनधर्म को जितना जान सका हूं मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि विरोधी सज्जन यदि जैन साहित्य का मनन कर लेंगे तो विरोध करना छोड़ देंगे।

—स्व० डा० गंगानाथ झा, एम० ए०, डी लिट्

जैनधर्म विज्ञान के आधार पर है, विज्ञान का उत्तरोत्तर विकाश विज्ञान को जैन दर्शन के समीप लाता जा रहा है।

—डा० एल० टैसी टौरी, इटली

जैन संस्कृति मनुष्य संस्कृति है, जैन दर्शन भी मनुष्य दर्शन ही है। 'जिन' 'देवता' नहीं थे, किन्तु मनुष्य थे।

—प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य

जैनधर्म में मनुष्य की उन्नति के लिए, सदाचार को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। जैनधर्म अधिक मौलिक, स्वतन्त्र तथा सुव्यवस्थित है। ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा यह अधिक सरल, सम्पन्न एवं विविधतापूर्ण है और यह बौद्ध धर्मके समान शून्यवादी नहीं है।

—डा० ए० गिरनो

पराक्रम के क्षेत्र में

वीरता किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। भारत में प्रत्येक जाति में वीर पुरुष हुए हैं। राजपूताना सदा से वीरस्थली रहा है। जैनधर्म दया प्रधान होते हुए भी वे लोग अन्य जातियों से पीछे नहीं रहे हैं। शताब्दियों से राजस्थान में मन्त्री आदि उच्च पदों पर बहुधा जैनी रहे हैं, उन्होंने देश की आपत्ति के समय महान् सेवाएं की हैं, जिनका वर्णन इतिहास में मिलता है। राजपूताना में शासन करने वाले चौहान, सोलंकी गहलौत आदि जैन धर्मावलम्बी वीर पुरुष थे।

—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

जैन नरेशों तथा सेनानायकों के ऐसे कार्यों को देखते हुए यह बात स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं कि जैनधर्म तथा बौद्धधर्मकी शिक्षा के कारण हिन्दू भारतमें सांग्रामिक शौर्यका ह्रास हुआ है।

—डा० अल्टेकर

चामुण्डराय से बढ़कर वीर सैनिक, जैनधर्म भक्त और सत्यनिष्ठ व्यक्ति का कर्नाटकने कभी भी दर्शन नहीं किया।

महाप्रतापी एल सम्राट महामेघवाहन खारवेल महाराज जैन थे। राष्ट्र कूटों में जैनधर्म की विशेष मान्यता थी। सम्राट अमोघवर्ष जिनेन्द्र भक्त, विद्वान, पराक्रमी, पुन्यचरित्र तथा व्यवस्थापक नरेश थे।

पांचवीं से बारहवीं शताब्दी पर्यन्त मैसूर, मुम्बई प्रान्त एवं दक्षिण भारत में चालुक्यवशीय जैन नरेशों का शासन था।

दक्षिण भारत की जैन वीरागनाओं में जक्कैयावी, जक्कल देवी, सविंयव्वी, भैरव देवी विशेप विख्यात हैं।

—पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर शास्त्री न्यायतीर्थ

जैन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्म

हिन्दू संस्कृति भारतीय सस्कृति का एक अश है, और जैन तथा बौद्ध यद्यपि पूर्णतया भारतीय हैं परन्तु हिन्दू नहीं हैं।

—प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू
(डिस्कवरी ऑफ इण्डिया)

जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र है मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है।

—स्व० डा० हर्मन जेकोबी M.A. Ph. D., जर्मनी

यह सत्य है कि जैन लोग वेदों को अपना धर्मग्रथ नहीं मानते। ब्राह्मण धर्म के समान वे मृतक क्रिया कर्म, श्राद्ध एव स्वर्गीय व्यक्ति के लिए नैवेद्य अर्पण करने की बात को स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी यह धारणा है कि औरस अथवा दत्तकपुत्र से पिता की आत्मा को कोई भी आत्मीक श्रेय नहीं प्राप्त होता। वे ब्राह्मण धर्म वाले हिन्दुओं से मृत व्यक्ति के शरीर दाह अथवा गड़ाने के सिवाय अन्य क्रियाकाण्ड न करने के कारण पृथक् हैं। आधुनिक ऐतिहासिक शोध से यह प्रकट हुआ है कि यथार्थ में ब्राह्मण धर्म के सद्भाव अथवा उसके हिन्दू धर्म रूप में परिवर्तित होने के बहुत पूर्व जैनधर्म इस देश में विद्यमान था। यह सत्य

है कि देश में बहुसंख्यक हिन्दुओं के सम्पर्कवश जैनियों में ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित अनेक रीति रिवाज प्रचलित हो गये हैं।

—श्री रांगलेकर न्यायमूर्ति बम्बई हाईकोर्ट

निर्ग्रन्थ श्रावकों का देवता निर्ग्रन्थ है "निगन्थ सावकानाम् निगन्थो देवताः।"

—पाली त्रिपिटक निद्देश पत्र १७३-४

राजगृही में एक दफे बुद्ध ने महानम को कहा कि "इसिगिली (ऋषिगिरि स०) के तट पर कुछ निर्ग्रन्थ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे। तब मैंने उनसे पूछा—क्यों ऐसा करते हो? उन्होंने जवाब दिया कि उनके नाथपुत्र (भगवान महावीर) ने जो सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हैं उनसे कहा है कि पूर्व जन्म में उन्होंने बहुत पाप किये हैं, उन्हीं के क्षय करने के लिए वे मन वचन काय का निरोध कर रहे हैं।"

—मज्झमनिकाय जिल्द १ पत्र ९२-९३

आधुनिक शोध ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैनधर्म हिन्दू धर्मसे तभिन्नता धारण करने वाला उपभेद नहीं है। जैनधर्म का उद्भव एवं इतिहास उन स्मृति, शास्त्रों तथा उनकी टीकाओं से बहुत प्राचीन है जो हिन्दू कानून और रिवाज के लिये प्रामाणिक मानी जाती है। यथार्थ बात यह है कि जैनधर्म हिन्दू धर्म के आधार स्तम्भ वेदों को प्रमाण नहीं मानता। यह उन अनेक क्रियाकाण्डों को अनावश्यक मानता है जिन्हें हिन्दू लोग आवश्यक समझते हैं।

—श्री कुमार स्वामी शास्त्री स्थानापन्न प्रधान विचारपति मद्रास हाईकोर्ट

बौद्धोंने निर्ग्रन्थों (जैनों) का नवीन सम्प्रदाय के रूप में उल्लेख हीं किया है और न उनके विख्यात संस्थापक नातपुत्र (भगवान महावीर स्वामी) का संस्थापक के रूप में ही किया है। इससे जैकोबी इस

निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि जैनधर्म के सस्थापक महावीर की अपेक्षा प्राचीन है तथा यह सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती है।

Religion of India by Prof. E. W. Hopkins
S. P. 283.

यद्यपि वेदों में पशुबली को स्वर्ग प्राप्ति का साधन बतलाया है, तथापि उस समय के जैन मुनियों के प्रभाव से कुछ तो परिवर्तन हुआ ही है। महात्मा तीर्थंकरों के अहिंसा तत्त्वज्ञान का ससार में बोलबाला हुआ। उपनिषदों में जैनियों का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

—हाइकोर्ट जस्टिस सर नियोगी

जैनधर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र है।

—प्रो० मैक्समूलर

जैनधर्म इस देश में ब्राह्मण धर्म के जन्म या उनके हिन्दू धर्म कहलाने के बहुत पहले से प्रचलित था।

—रागनेकर जस्टिस आफ बम्बई हाईकोर्ट

जैन ऋषभदेव के चरित्र से जनता मन्त्रमुग्ध थी।

—महाभारत मोक्षधर्म अध्याय

चौदह मनुओं में से पहिले मनु स्वयभू के प्रपौत्र नाभिका पुत्र ऋषभदेव हुआ। जो दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का आदि प्रचारक था। इनके जन्मकाल में जगत की बाल्यावस्था थी।

—भागवत स्कन्ध ५, अ० २ सुत्र ६

वैदिक साहित्य में ऋषभ नेमि आदि नाम प्रसिद्ध हैं, जैनधर्म के अनुयायी निर्ग्रन्थ कहे जाते थे।

—डा० विमलचरण ला

जैनमत तबसे प्रचलित हुआ, जबसे ससार में सृष्टि का आरम्भ हुआ। मुझे इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है कि जैनधर्म वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है।

—डा० सतीशचन्द्र प्रिन्सिपल संस्कृत कॉलेज कलकत्ता

शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान ने अनेक अवतार धारण किये परन्तु जैसा ससार के मनुष्य कर्म करते हैं वैसा किया। किन्तु ऋषभदेव जी ने जगत को मोक्षमार्ग दिखाया, और खुद मोक्ष गये। इसी लिये मैंने ऋषभदेवको नमस्कार किया है।

भागवत् भाषा टीका पृ० ३७२

स्वस्ति नस्ताक्षर्यों अरिष्ट नेमि स्वस्तिनौ बृहस्पतिर्दधातु।

—यजु० अ० २५ मन्त्र १९

नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्धमानो अस्मै स्वाहा।

—यजु० अ० ९ मंत्र २५

भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान का इस ससार के सर्वभूत जीवों के लिये सर्व प्रकार से यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सर्वज्ञ प्रगट करते हैं और जिनके दयामय उपदेश से जीवों को आत्मस्वरूप की पुष्टिता शीघ्र बढ़ती है, उसको आहुति हों।

-- यजुर्वेद अध्याय ९ मन्त्र २५

ऋषभ मा समानाना सयत्रानाना विषा सहिम्।
हन्तार शत्रूणां कृधि, विराजं गोपित गवाम्॥

--ऋग्वेद अ० ८ मन्त्र ८ सूत्र २४

जबसे मैंने शकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है, तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है। जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा। और जो कुछ मैं अब तक जैनधर्म को जान सका हू उससे मेरा यह दृढ़ विश्वास हुआ है कि यदि वे (शकराचार्य) जैनधर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैनधर्म के विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।

—स्व० डा० महामहोपाध्याय गंगानाथ झा, भूतपूर्व वाइस चांसलर, प्रयाग विश्वविद्यालय

मैं अपने देशवासियों को दिखाऊंगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊंचे विचार जैनधर्म और जैन आचार्यों में हैं जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य से काफी बढ़ चढ़कर है। ज्यों ही ज्यों मैं जैनधर्म तथा उनके साहित्य को समझता हूं, त्यों ही त्यों मैं अधिकाधिक पसन्द करता हूं।

—डा० जान्स हर्टल जर्मनी

इतिहास के आंगण में

भ० महावीर स्वामी जैनधर्म को पुन. प्रकाश में लाये। वे २४ वें अवतार थे, इनके पहले ऋषभ, नेमि, पार्श्व आदि नाम के २३ अवतार और हुए हैं, जो कि जैनधर्म को प्रकाश में लाये थे, इस प्रकार इन २३ अवतारों के पहले भी जैनधर्म था, इससे जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है।

—स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

वर्द्धमान अपने को उन्हीं सिद्धान्तों के प्रवर्तक बतलाते थे जो पूर्ववर्ती उन २३ महर्षियों अथवा तीर्थङ्करों की परम्परा द्वारा जिनका इतिहास अधिकतर आख्यानों के रूप में मिलता है, प्रकाश में लाये थे। वे किसी नये मत के सस्थापक नहीं थे। ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दि में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की उपासना करने वाले मौजूद थे, जिनके पर्याप्त प्रमाण हैं। स्वय यजुर्वेद में तीर्थङ्करों के प्रमाण मौजूद हैं। भागवत्पुराण भी इसी बात की पुष्टि करता है। जैनियों का धर्ममार्ग पहले के अगणित युगों से चला आया है।

इन्डियन फिलोसोफी पृष्ठ २२७

—हिज एक्सेलेंसी डा० राधाकृष्णन भारतीय राजदूत रूस

जैनियों के २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ ऐतिहासिक महापुरुष माने गये हैं।

—डा० फुहरर

नेमिनाथ श्री कृष्ण के भाई थे।

—श्रीयुत बरवे

ऐतिहासिक सामग्री से सिद्ध हुआ कि आज से पांच हजार वर्ष पहले भी जैनधर्म की सत्ता थी।

—डा० प्राणनाथ ऐतिहासज्ञ

यह भी निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहले भी जैनियों के २३ तीर्थङ्कर हो चुके हैं।

—इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया पृष्ठ ५४

नेमिनाथ भगवान ऐतिहासिक महापुरुष हैं क्योंकि यदि महाभारत के प्रमुख पुरुष श्री कृष्ण इतिहास की भाषा में अस्तित्व रखते हैं, तो उनके चचेरे भाई परम दयालु भगवान् नेमिनाथ को कौन सहृदय ऐतिहासिक विभूति न मानेगा? जिनके निर्वाण स्थल रूप में उर्जयन्त गिरि पूजा जाता है।

—श्री हरि सत्य भट्टाचार्य एम० ए०

पश्चिमीय एव उत्तरीय मध्यभारत का ऊपरी भाग ईसवी सन से १५०० वर्ष से लेकर ८०० वर्ष पूर्व पर्यन्त, उन तूरानियों के अधीन था जिनको द्रविड़ कहते हैं। उनमें सर्प, वृक्ष तथा लिंगपूजा का प्रचार था। उस समय उत्तर भारत में एक प्राचीन, अत्यन्त सगठित धर्म प्रचलित था, जिसका दर्शन, आचार एवं उच्च तपश्चर्या सुव्यवस्थित थी, वह जैनधर्म था। उससे ही ब्राह्मण तथा बौद्धधर्म में आरम्भिक तपश्चर्या के चिह्न प्रबुद्ध हुए। आर्य लोगों के गंगा अथवा सरस्वती तक पहुचने के बहुत पूर्व अर्थात ईसवी सन् से आठ सौ, नौ सौ वर्ष पहले होने वाले तीर्थङ्कर पारसनाथ के पूर्व बाईस तीर्थङ्करों ने जैनियों को उपदेश दिया था।

—मेजर जनरल J G.R. फरलांग
एम० ए०, एफ० आर० ए०

भगवान पार्श्वनाथ को जैनधर्म के संस्थापक प्रमाणित करने वाले साधनों का अभाव है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को जैनधर्म का संस्थापक प्रमाणित करने में जैन परम्परा एकमत है। इस परम्परामें, जो उनको प्रथम तीर्थङ्कर बताती है, कुछ ऐतिहासिक तथ्य सम्भवनीय है।

---डा० जैकोवी

भागवत पुराण भगवान ऋषभदेव को जैनधर्म का संस्थापक तलाता हैं।

---सर राधाकृष्णन्

आर्यों के भारत आगमन से पूर्व भारत में जिस द्रविड़ सभ्यता का प्रचार हो रहा था, वह वास्तव में जैन सभ्यता ही थी। जैन समाज में अब भी द्रविड़ संघ नाम से एक अलग धार्मिक आम्नाय मिलती है।

---सर षण्मुखम् चेट्टी

इन खोजों से (मथुरा के जैन स्तूप) लिखित जैन परम्परा का अत्याधिक समर्थन हुआ है। वे इस बात के स्पष्ट और अकाट्य प्रमाण हैं कि जैनधर्म प्राचीन है और वह प्रारम्भ में भी वर्त्तमान स्वरूप में था।

---प्रो० ए० विंसेण्ट स्मिथ

चन्द्रगुप्त स्वयं जैन था वह श्रमणों (जैन गुरुओं) से उपदेश सुनता था।

---मैगस्थनीज ग्रीक इतिहासकार

सम्राट अशोक ने काश्मीर तक जैनधर्म का प्रचार किया था।

---अबुलफजल (अकबरका दरबारी रत्न)

पांचवीं सदी के जैनग्रंथ एवं पश्चाद्वर्ती जैन शिलालेख यह प्रमाणित करते हैं कि चन्द्रगुप्त जैन सम्राट था, जिसने मुनिराज का पद अंगीकार किया था। मेरे अध्ययन ने जैन शास्त्रों की ऐतिहासिक बातोंको स्वीकार करने को मुझे बाध्य किया है।

---डा० काशीप्रसाद जायसवाल

विद्वान शंकराचार्य ने इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है। यह बात अन्य योग्यता वाले पुरुषों में क्षम्य हो सकती थी, किन्तु यदि मुझे कहनेका अधिकार है तो मैं भारत के इस महान् विद्वानको सर्वथा अक्षम्य ही कहूंगा, यद्यपि मैं इस महर्षि को अतीव आदर की दृष्टि से देखता हूं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने इस धर्म के (जिसके लिये अनादरसे विवसन-समय-अर्थात नग्न लोगोंका सिद्धान्त ऐसा नाम वे रखते हैं) दर्शन-शास्त्र के मूलग्रन्थों के अध्ययन की परवाह न की।

—प्रो० फणिभूषण अधिकारी, अध्यक्ष दर्शनशास्त्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

जैन शिल्पकला

इजिप्ट के बाहर कहीं भी इतनी विशाल और अन्य मूर्ति (भगवान गोम्मटेश्वर बाहुबली की ६० फीट ऊंची मूर्ति मैसूर राज्य में है जिस पर्वत पर मूर्ति विराजमान है वह भूतल से ४७० फीट तथा समुद्रतल से ३३४७ फीट ऊंचाई पर है। पर्वत का व्यास २ फर्लांग के लगभग है तथा पहाड़ पर चढ़ने के लिये ५०० सीढ़िया पहाड़ में ही उत्कीर्ण हैं) नहीं है। वहां भी ऐसी कोई मूर्ति ज्ञात नहीं है जो इस मूर्ति के द्वारा प्रदर्शित पूर्ण कला तथा ऊंचाई में आगे बढ़ सके।

—फरग्यूसन, शिल्प शास्त्री

भारतवर्ष के मन्दिरों में यह (आबू पर्वत पर अवस्थित जैन मंदिर) श्रेष्ठ है यह बात निर्विवाद है। ताजमहल के सिवाय कोई और भवन उसकी समता नहीं कर सकता है। इसका चित्र तैयार करने में लेखनी थक जाती है। अत्यन्त श्रमशील चित्रकार की कलम को भी इसमें महान श्रम पड़ेगा। इन मन्दिरों में जैनधर्मकी कथाएं चित्रित की गई हैं। व्यापार, समुद्र यात्रा, रणक्षेत्र आदि के भी चित्र विद्यमान हैं।

—कर्नल टॉड

अगर हम दस मील लम्बी त्रिज्या (Radius) लेकर भारत के किसी भी स्थान को केन्द्र बना वृत बनावें तो उसके भीतर निश्चय से जैन भग्नावशेषों के दर्शन होंगे।

—एक पुरातत्ववेत्ता (कानन्द मासिक)

जैन साहित्य

जैनियों के इस विशाल संस्कृत साहित्य के अभाव में संस्कृत कविता की क्या दशा होगी ? जैन साहित्य का जैसे-जैसे मुझे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे मेरे चित्त में इसके प्रति प्रशंसा का भाव बढता जाता है।

—डा० हर्टल

जैन धार्मिक ग्रंथों के निर्माणकर्ता विद्वान बड़े व्यवस्थित विचारक रहे हैं। वे यह बात जानते हैं, कि इस विश्व में कितने प्रकार के विभिन्न पदार्थ हैं। इनकी इन्होंने गणना करके उसके नक़शे बनाये हैं। इसमें वे प्रत्येक बातको यथास्थान बता सकते हैं।

जैनियों ने व्याकरण, ज्योतिष तथा अन्य ज्ञान के विषयों में इतनी प्रवीणता प्राप्त की है, कि इस विषय में उनके शत्रु भी उनका सम्मान करते हैं। उनके कुछ शास्त्र तो यूरोपीय विज्ञान के लिये अब भी महत्वपूर्ण हैं। जैन साधुओं द्वारा निर्मित नींव पर तामिल, तेलगू, तथा कन्नड़ साहित्यिक भाषाओंकी अवस्थिति है।

—प्रोफेसर बूलर

कन्नड़ भाषा के आद्य कवि जैन हैं। अब तक उपलब्ध प्राचीन और उत्कृष्ट रचनाओं का श्रेय जैनियों को है।

—प्राकृत विमर्शविचक्षण रा० ब० नरसिंहाचार्य एम० ए०

आवश्यक सूचना

जैनधर्म पर अन्वेषण करने वाले विद्वानोंको जैनधम विषयक साहित्य अथवा जैनधर्म सम्बन्धित विविध विषयों के विशेष विद्वानों के पते इत्यादि के विषय मे तथा अन्वेषण के लिये आवश्यक सुविधाओं के लिये निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिये।

आनरेरी जनरल सेक्रेटरी
श्री वीर शासन संघ
११ ए, सैयदशाली लेन
कलकत्ता-७

जवाहर प्रेस, १६१।१, हरीसन रोड, कलकत्ता।

१०

ट्रैक्ट नं० ३२/१७

इतिहास में

भगवान महावीर का स्थान

लेखक—

श्री जय भगवान जैन एडवोकेट

पानीपत पंजाब

श्री वीर संवत् २४८४

प्रकाशक—

बाबू लाल जैन जमादार प्रचार मंत्री

अ० वि० जैन मिशन

बड़ौत (मेरठ)

(तृतीय आवृति) १९५८ ई० (२०००

अपनी बात

संस्थाओं व स्कूलों, कालेजों तथा विज्ञपुरुषों की मांगों ने हमें बाध्य किया कि "इतिहास में भगवान महावीर का स्थान" नामक पुस्तक पुनः छपवाई जाय। पाठकों की व साथियों की इच्छाओं का सम्मान करना अ० वि० जैन मिशन का काम है।

तीसरी बार पुस्तक आपके हाथ में छपकर पहुंच रही है। हम तो अपने उदार साहित्य प्रेमी श्री सेठ अमर चन्द जी पलासवाड़ी वालों का आभार मानेंगे ही कि उन्होंने हमारे एक बार कहने पर ही पुस्तक छपवादी। साथ ही अपने प्रिय पाठकों का भी आभार मानूँगा कि उन्होंने मिशन का साहित्य पसंद करके हमें पुनः २ छपवाने के लिये प्रेरित किया।

मैं अस्वस्थ्य था, इस से पुस्तक देर से छप सकी है। "सच्चा साम्यवाद और साम्यवादी भगवान महावीर" भी शीघ्र छपकर पाठकों की सेवा में पहुंच जावेगी।

अर्थाभाव से आपका जैन वि० मिशन जो सेवायें आपकी करना चाहता है। वह नहीं कर पा रहा इसका हमे दुःख है।

क्या आशा करूँ कि आप साहित्य प्रचार में हमारा हाथ बटावेंगे।

दिगम्बर जैन कालेज, बड़ौत (मेरठ) — रक्षा बन्धन, २६ अगस्त ५८ — बाबू लाल जैन जमादार

श्रीमान् दानवीर सेठ अमरचन्द जी पांड्या
पलामबड़ो हाल कलकत्ता
जैन धर्म के प्रसार व प्रचार में आप
अ० वि० जैन मिशन् के अध्यक्ष पद पर
से सेवा कर रहे हैं।

इतिहासमें भगवान महावीर का स्थान

महावीर से पूर्व की स्थिति—

दुनियां के इतिहास में ईसा से ६०० वर्ष पहलेका काल आजके काल से बहुत कुछ मिलता जुलता हुआ है, इस लिए उस युग की परिस्थिति, प्रवृति और उनके परिणामों को अध्ययन करना हमारी अपनी कठिनाईयों को हल करने के लिए बहुत जरूरी हैं। यह वह जमाना था, जब मानव जीवन मानसीक, धार्मिक और सामाजिक रूढियों से जकडा हुआ था। उसके विकासका स्वाभाविक स्रोत बहते बहते कर्तव्य-विमूढता से रुककर ठहर गया था। वह अनेक देवो देवताओं की पूजा प्रार्थना करते करते अपनी गुलामी से ऊब चुका था और जाती, वर्ण तथा धर्म के नाम पर लड़ते झगते उसका मन थक गया था। तब आजादी की भावनायें उठ उठ कर उसे वाचाल बना रही थीं। तब उसका मन किसी ऐसे सत्य और हकीकत की तालाश मे घूम रहा था, जिसे पाकर वह सहज सिद्ध सुख शान्ति और सुन्दरता का आभास कर सके, तब वह किसी ऐसी दुनियां को रचना मे लगा था, जहाँ वह सबके साथ मिल जुल कर सुखका जोवन बिता सके।

यह जमाना दुनिया की तवारीख में मानसिक जागृति, धार्मिक क्रान्ति और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। उस ज़माने ने पूर्व और पश्चिम सभो देशो मे अनेक महापुरुषों को जन्म दिया था। तब योरुप से पाईथेगोरस और एशिया मे कन्फयूसस, लाओत्ज जैसे महात्माओं ने जन्म लिया था। उस समय हिन्दुस्तान मे भगवान महावीर और म० बुद्ध ने इस जागृति मे विशेप भाग लिया था।

उस जमानेके भारत मे तीन बड़ी बड़ी विचारधारायें काम ... जिन्हें हम आज देवतावाद, जडवाद, और अध्यात्मवाद के नाम से पुकार सकते हैं। पहली धारा वैदिक

ऋषियों की उस हैरतभरी निगाहों से पैदा हुई थी जो प्राकृतिक दृश्यों और चमत्कारोंको देख देख कर उनमें मनुष्योतर दिव्य शक्तियों का भान करा रही थी। दूसरी धारा व्यवहार कुशल लोगों की उस दुनियावी दृष्टि की उपज थी, जो मनुष्य के ऐहिक-जीवन को सुखी और सम्पन्न देखना चाहती थी। तीसरी धारा वीतरागी श्रमणोंके उन भरपूर हृदयोंसे निकली थी, जो इस निःसार, दुखमय जीवन से परे किसी अक्षय अमर सच्चिदानन्द जीवन का आभास कर रहे थे। इन्हीं तीनों धाराओं के संगमपर भगवान महावीर का जन्म हुआ था।

यद्यपि उस समय यह तीनों विचारधारायें अपनी अपनी पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी—देवतावाद मे "एकमेव अद्वितीय ईश्वर" का भान हो चुका था, जड़वाद अपने लौकिक अभ्युदय के लक्ष्य को चक्रवर्तीयोंकी निर्वाध समृद्धिसम्पन्न एकछत्र राष्ट्रियता की ऊंचाई तक उठा चुका था और अध्यातमवाद 'निर्विकल्पकवल्य' जैसे आत्मा के सर्वोच्च आदर्शोंको पाकर परमात्मपद की सिद्धी कर चुका था। वह 'सोऽहम्' और तत्वमसि के मन्त्रोंकी दीक्षा दे कर सवसाधारण मे आत्मा और परमात्माकी एकता को मान्य बना चुका था—परन्तु कालदोप से बिगड़कर उस समय यह तीनों धारायें अपने अपने सल्लक्ष्य, सद्ज्ञान और सत्पुरुष को छोड़ कर केवल ऊपरी चमत्कारों, मौखिक वितण्डावादों और रूढ़िक क्रियाकाण्डों में फस गई थी। अहंकार विमूढ़ता और दुराग्रहने इन्हें तेरा-तीन किया हुआ था। इनके पोषक और उपासक कुछ भी रचनात्मक कार्य न करके केवल अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा करने से ही अपनेको कृत्कृत्य मान रहे थे। पक्षपात इतना बढ़ गया था कि सभी सच्चाई के एक पहलूको देखते जो उन्हें मान्य थी, अन्य सभी पहलुओं की वे अवहेलना करते थे-ये सब एकान्तवादी वने थे। इनकी बुद्धि कूटस्थ हो चली थी। तब इनमें न दूसरों के विचारों को सुनने और समझने की सहनशीलता थी न दूसरों को अपनानेकी

उदारता थी, न जमाने की परिस्थिति के साथ बदलने सुधरने और आगे बढ़ने की ताकत थी। तब इनके दिलों में संकीर्णता जबान में कटुरता और वर्ताव में हिंसा भरी थी।

ऐसे वातावरण मे जात-पात और वर्णव्यवस्था के संकीर्ण भावोंको फलने फूलने की खूब आजादी मिली थी। तब जन्म के आधार पर छुटाई बड़ाई की कल्पनाओंने भारतीय जनताको अनेक टुकड़ों मे बांट दिया था। भारत की मूल जातियों की दशा जो मानवता के क्षेत्रसे निकल कर क्षुद्रता केगढ्ढ मे धकेल दी गई थी, पशुओं से भी परे थी। उन्हें अपने विकास के लिये धार्मिक, राष्ट्रीय और सामाजिक कोई भी अधिकार और सुविधाएं प्राप्त न थी। तब धर्म के नाम पर सब ओर हिंसा, विलासिता और शिथिलाचार बढ़ रहा था। मांस मदिरा और मैथुन व्यसन खूब फैल रहे थे, स्त्री गोया स्वय मनुष्य न होकर मनुष्य के लिये भोगवस्तु बनी हुई थी। बहुत से विमूढ़ जन नदियों में डूबकर पर्वतों से गिर कर, अग्नि मे जलकर, स्वहत्या द्वारा अपना कल्याण मानते थे। व्यर्थ के अन्धविश्वासों क्रियाकाण्डों और विधि-विधानो में समाज के धन, समय और शक्तिका ह्रास हो रहा था। तब धर्म सीधेसादे आचार की चीज न रह कर जटिल आडम्बर की तिजारती चीज बन गई थी जो यज्ञ-हवन कराकर देवी-देवताओं से, दान-दक्षिणा देकर पुरोहित पुजारियों से खरीदी जा रही थी।

उस समय भारत के श्रमण साधु भी विकार से खाली न थे। उन में से बहुत से तो ऋद्धि-सिद्धिके चमत्कारों में पडकर हठयग के अनुयायी बने थे। बहुत से साधु जैसा बाहरीरंगरूप बनाकर रहने में ही अपने को सिद्धमानते थे। बहुत से तनकी बाहरी शुद्धिको ही अधिक प्रधानता दे रहे थे। बहुत से सुख शीलता में पड़कर थोथी सैद्धान्तिक चर्चाओं और वाक्संघर्ष मे ही अपने समय को बिता रहे थे। बहुत से दम्भ और भय से इतने भरे थे कि वे दूसरों को अध्यात्म विद्या देने में अपनी हानि समझने लगे थे।

भारत की इस परिस्थिति में जब धर्म के नाम पर मानवता का खून और आत्माका शोषण हो रहा था सब ही हृदयों मे प्रचलित विश्वासों मान्यताओं और प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक विद्रोह की लहर जाग रही थी विचारों मे उथल-पुथल मची थी, स्थितिपालकों और सुधारकों मे संघर्ष चल-रहा था। इस संघर्ष के फलस्वरूप तब सभी धाराओं के विद्वान अपने अपने सिद्धान्तों की सभाल शोध और उनके इकट्ठा करने में लगे थे। एक तरफ वैदिक परम्परा की रक्षा लिये यास्काचार्य, शौनक और आवश्यकता जैसे विद्वान पैदा हो रहे थे। दूसरी तरफ वैदिक संस्कृतिको मिटाने और भौतिक संस्कृतिकों फैलाने के लिये जडवाद के प्रसिद्ध आचार्य अजितकेशकम्बली और बृहस्पति मैदान मे आ रहे थे। तीसरी भौतिकवाद की निस्सारता दिखाने के लिए अक्षपाद गौतम जैसे न्यायदर्शनको जन्म दे रहे थे। इनके साथ ही साथ मस्करी गोशाल' संजय प्रकुद्ध, कात्यायन और पूर्णकश्यप जैसे कितने ही आध्यात्मिक तत्वेत्ता अपने अपने ढग से जीवन और जगत की गुत्थियों को सुलझाने मे लगे थे।

जैनधर्म का उद्धार और तत्कालीन स्थिति का सुधार

ऐसे वातावरण में लोगों के दिलों मे समता, मन में उदारता वर्ताव में सहिष्णुता और जीवन मे सयम सदाचार भरने के लिए भगवान महावीरने अपने आदर्श जीवन और उपदेश द्वारा जिस श्रमण संस्कृतिका पुनरुद्धार किया था वह उनके पीछे जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान महावीर इस धर्म के कोई मूल-प्रवर्तक न थे, वह उसके उद्धारक ही थे, क्योंकि यह धर्म उससे बहुत पहले वैदिक आर्यगण के आने से भी पहिले यहाँ के मूलवासी द्राविड और नाग के लोगों में 'अर्हत यति, व्रात्य जिन, निर्ग्रन्थ अथवा श्रमण सस्कृतिके' नाम से बराबर जारी था और पीछे से विदेह और मगध देश में आकर उसने बसनेवाले सूर्यवंशी आर्यगण से अपनाया जाकर आर्यधर्म मे में बदला गया था। यह धर्म भारत भूमिकी ऐसी ही मौलिक

उपज है, जैसे कि यहां के शैव और शाक्त नाम के प्राचीन धर्म इस ऐतिहासिक सच्चाई को मानने के लिए गो शुरू शुरू मे ऐतिहासज्ञों को बड़ी कठिनता उठानी पड़ी किन्तु आज प्राचीन साहित्य और पुरातत्वकी नई खोजों से यह बात दिन पर दिन अधिक प्रमाणित होती जा रही है कि जैनधर्म भारत के मूलवासी द्राविड़ लोगों का धर्म[1] है। और महावीर से भी पहिले इस धर्म के प्रचारक ऋषिभदेव आदि २३ तीर्थंकर और हो चुके है। इनमे से अरिष्टनेमी और पार्श्वनाथ तो आज बहुत अंशों मे ऐतिहासिक व्यक्ति भी सिद्ध हो चुके हैं।

श्रमण-संस्कृति सदा ही जीवन-विकास के लिये सात तत्त्वोंको मुख्यता देती रही है-आत्म विश्वास, मानसिक उदारता, सयम अनासक्ति अहिंसा, पवित्रता और समता। भगवान महावीर ने इन्हें ही साधन-द्वारा अपने जीवन मे उतारा था और इन्हीं को सबको शिक्षा दीक्षा दी थी। यही सात आध्यात्मिक तत्त्व आज जैन दार्शनिकोंकी बौद्धिक परिभाषा में जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वर्णव्यवस्था और मानवता

भगवान ने सामाजिक क्षेत्र में जन्म के आधार पर बने हुए मानवी भेद-भावोंका घोर विरोध किया। उन्होंने बताया कि जन्म की अपेक्षा सभी मनुष्य सामान है। सभी एक जाति के है, क्योंकि सब ही एक समान गर्भ मे रहते है, एक समान ही पैदा होते हैं। सबके शरीर और अंगोपाङ्ग भी एक समान हैं, किन्हीं दो वर्णों के समागमसे मनुष्य ही उत्पन्न होता है। इसलिए मनुष्यों में जन्म की अपेक्षा विभिन्न जातियों की कल्पना करना कुदरती नियम के खिलाफ हैं। जन्म से कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शिल्पी और चोर नहीं होते वे सब अपने कर्म, स्वभाव और गुणों से ही ऐसे होते है। मनुष्यों मे श्रेष्ठता और नीचता उनके अपने आचार विचार पर ही निर्भर हैं। जो लोग कुल, गोत्र वर्ण आदि

1 (अ) Prof. Belvalkar-Brahma Sutra P. 107

एकान्तवाद और अनेकान्तवाद

विचारकों के हठाग्रह, पक्षपात और एकान्त-पद्धति के कारण लोगों में जो अहंकार, संकीर्णता, मनोमालिन्य, कलह क्लेश बढ़ रहे थे, उन्होंने भगवान महावीर के ध्यानको विशेषरूप से आकर्षित किया था, भगवानने इस एकान्त पद्धतिको ही ज्ञान-अवरोध, मानसिक संकीर्णता, हार्दिक द्वेष और मौखिक विवादोंका कारण ठहरा कर इसकी कठोर समालोचना की थी और बतलाया था कि सत्य, जिसे जानने की सबमें जिज्ञासा बनी है, जिसके सम्यक् ज्ञानसे मुक्तिकी सिद्धि होती है, बहुत ही गहन और गम्भीर है, वह अनेक अपेक्षाओं का पुञ्ज है, अनेक विरोधों का संगम है, वह सत्यासत्य नित्य नित्यानित्य, एकानेक सामान्य विशेष जीवाजीव सत्यअनृत आदि विभिन्न द्वन्द्वों की रंग भूमि है वह भीतर और बाहर सब ओर फैला हुआ है, वह अनादि और अनंत है, वह हमारी सारी बौद्धिक मान्यताओं और विधिनिषेधरूप सारे शब्दवाक्यों से बहुत ऊपर है। वह अनेकान्तमय है, इस लिए उसके अध्ययन में हमें बहुत ही उदार होना चाहिये और तत्सम्बन्धी सभी विचारों को समझने, अपनाने और समन्वय करने की कोशिश करनी चाहिये।[२]

भगवानके प्रति लोगोंकी श्रद्धा

इस तरह महावीरका जीवन इतना तपस्वी, त्यागपूर्ण दयामय, सरल और पवित्र था, उनके विचार इतने उदार, व्यापक और समन्वयकार थे, उनके सिद्धांत ऐसे आशा पूर्ण उत्साह वर्धक और शांतिदायक थे कि वह अपने जीवन काल में ही अर्हन्त, सर्वज्ञ, तीर्थङ्कर आदि नामों से प्रसिद्ध हो चले थे। केवलज्ञानप्राप्तिके पीछे वह भारत के पूर्व पश्चिम, उत्तर, मध्य और दक्षिण के देशों में जहां कहीं भी गये सभी राजा और रङ्क, पतित और

---

२ (अ) बा० कामताप्रसाद-भगवान महावीर और महावीर महात्मा बुद्ध पृ० ६५–६६ (आ) पं० कल्याण विजय-श्रमण भगवान महावीर तीसरा परिछेद

प्रतिष्ठन, ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, पुरुषों और स्त्रियों ने उनका खूब स्वागत किया सभी ने उनके उपदेशों को अपनाया और सभी उनके मार्ग के अनुयायी बने। इनमें वैशाली के राजा चेटक, अङ्गदेश के राजा कुणिक, कलिङ्ग के राजा जितशत्रु वत्स के राजा शतानीक, सिन्धु-सौवीर के राजा उदयन, मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार, दक्षिण हेमागदक राजा जीवधन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सम्राट श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि १३ राजकुमार और नन्दा, नन्दमती आदि १३ रानियां तथा उपरोक्त राजाओं में से उदयन और जीवधर तो उनके समान ही जिनदीक्षा ले जैन श्रमण बन गये। इनके अलावा वैदिक वाङ्मयके पारगत विद्वान् इन्द्रभूति, अग्निभूति और स्कन्दक जैसे अपनी सैकडों की शिष्य मण्डली सहित तथा शालिभद्र धन्यकुमार प्रीतबर आदि मगध धनकुबेर विद्युच्चर, अञ्जन जैसे डकू और चण्ड कौशिक जैसेमहाघातक भी उनके द्वारा दीक्षित हो जैनमुनि हो गये। उस समय उनकी मान्यता इतनी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि वह सभी के लिये अनुपम आदर्श धर्म अवतार हो गये थे। सभी के लिए परमशान्ति, परमज्ञान परमानन्द और विश्वकल्याण के प्रतीक बन गये थे। उसजमाने के लोग उनके आदर्श जीवन को ही दूसरे श्रमण अर्हन्तों की पूर्णता और सर्वज्ञता जाचने के लिए मापदण्ड की तरह काम में लाते थे (आ)।

---

१ (अ) Dr. B C Law—Historical gleanings P. 78
Bulher—Indian Sect of the Jainas P. 132
मज्झिम निकाय १४ वा सुत, अङ्गुत्तर निकाय १·२२०
(अ) महा० हरीचन्द ओझा भारतीय प्राचीन लिपि-माला।
पृ० २, ३
(आ) लोकमान्य तिलक सन १९०४ में जैनकान्फरेंस मेंदिया हुआ भाषण।

हरिश चन्द्र [illegible]
15 [illegible] उपवन,

उस समय के लोगों की भगवान के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी, इस बात का अन्दाजा लगाने के लिये इतना कहना ही काफी होगा कि भारत के ऐतिहासिक युग में सब से पहला सम्वत जो कायम हुआ वह इन्हीं के निर्वाण की शुभ स्मृति में कायम हुआ था। यह संवत् आज भी वीर-संवत् के नाम से जैन लोगों में प्रचलित है। कुछ विद्वानों का मत है कि द्वापर युग में महाराज युधिष्ठिर के राज्यारोहणकी स्मृति मे भी एक सम्वत् भारत में जारी हुआ था परन्तु इसका ऐतिहासिक युग से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्हीं के निर्वाण के उपलक्ष में दीपावली पर्व की स्थापना हुई। चूंकि इनका निर्वाण कार्तिक कृष्णा १४ की रात्रि के अन्तिम पहर में हुआ था अर्थात् चौदश व अमावस्या तिथि के सगम पर हुआ था इसलिए छोटी बडी दिवाली के नाम से दोनों दिन पर्व के दिन बन गये। घर-बार की सफाई करना उन्हें सजाना, दीपमालिका जगाना, मिठाई और खील वितरण करना समोशरण (हट्टो घरोंदा) की रचना करके उसे पूजना लक्ष्मी और गणेश की पूजा इस पर्व के विशेष अग हैं। भगवान के तपस्या काल की बंगाल प्रान्तगत वह पर्यटन भूमि जो कभी राढ अथवा लाड़ नाम से प्रसिद्ध थी, इन्हीं के वीर अथवा वर्धमान नामों के कारण आजतक सिंह भू-, मान भूम वीरभूम और वर्द्धमान के नाम से प्रसिद्ध है।

भारत के धर्मों मे जैनधर्म का स्थान

भगवानने अपने जीव काल मे जिस धर्म को देशना की थी वह उन के निर्वाण के बाद उनके अनुयायी अनेक त्यागी और तपस्वी महात्माओं के प्रभाव के कारण और भी अधिक फैला। वह फैलते २ भारत के सब ही देशोमे पहुंच गया और सब

(अ) N. L. Dey. Ancient Indian Geographical Dictionary P. 164

(आ) नागेन्द्रनाथ वसु बगला विश्वकोष १६२१

ही-जातियों के लोगों ने इससे शिक्षा दीक्षा ग्रहण की। यद्यपि इस धर्म के मानने वालों की संख्या आज केवल ३० लाख के लगभग हैं और यह धर्म आजकल अधिकतर वैश्य जातियों के लोगों में ही फैला हुआ दिखाई देता है परन्तु इससे यह भ्रान्ति कदापि न होनी चाहिये, कि यह धर्म सदा से लघुसंख्यक लोगों द्वारा ही भारत में अपनाया गया अथवा यह धर्म सदा से वैश्य लोगों में ही प्रचलित रहा है। नहीं—साहित्य, शिलालेख, पुरातत्व और स्मारकों के अगणित प्रमाणों से यह बात पूरे तौर पर सिद्ध है कि यह धर्म भारत के उत्तर-दक्षिण मे काम्बोज गान्धार और बलख से लेकर सिंहल द्वीप तक और पश्चिम-पूरब में अंग-बंग से लेकर सिन्धु सुराष्ट्र तक सबही स्थानों और जातियों मे फैला हुआ था, और इसके मानने वलों की संख्या ईसा की १६ वीं सदी अर्थात मुगल सम्राट अकबर केशासन-काल तक करोड़ से भी अधिक रही है। वास्तव में इस धर्म के उद्भव क्षत्रिय वीरों को योगसाधनासे हुआ है और उन्हीं के राजवंशोंकी संरक्षता में ईसा की १६ वीं सदी तक इसका उत्कर्ष होता रहा है भारत के ऐतिहासिक युग में ईसा पूर्व की छटी सदीसे लेकर अर्थात् भगवान महावीर कालसे ईसाकी पहिली सदी तक हम इस धर्म को लगातार विदेह देश के लिच्छवी और मल्ल जातिके क्षत्रियोंमें मगध के शिशुनाग नन्द और मौर्यराजवंशों मे, मध्यभारतके काशी, कौशल, वत्स अवन्ति और मथुरा के राज्य शासकों मे कलिंग के राजवंशी सम्राट खारवेल आदि के राजधानी मे सुराष्ट्र, राजपूतानाके लोगों में, उत्तर में गन्धर तक्षशिला आदि देशों में, दक्षिणके पाण्ड्य, पल्लव, चेर, चोल आदि तामिल देशो मे हम इस धर्मको एक आदरणीय धर्मके रूप मे सर्वत्र फैला हुआ देखते हैं। मौर्य-साम्राज्य के बिखर जाने के उपरान्त, ईसापूर्व की दूसरी सदी मे जो यूनानी, इण्डो सीथियन अथवा शाक जात के लोग एक दूसरे के बाद उत्तरीय देशोंसे आकर भारत के पश्चिम उत्तरके पंजाब सिन्ध, मालवा आदि प्रांतों के अधिकारी हो गये थे, वे भी जैन

धर्म से काफी प्रभावित हुए थे[1]। भारत के प्रसिद्ध यवन राजा मनेन्द्र (Mennander) जो जैन श्रमणोंके प्रति बडी श्रद्धा रखते थे-अपने अन्तिम जीवन मे जैन धर्ममें दीक्षित हो गये थे[2] क्षत्रप नहपान भी जैनधर्मके बड़े प्रेमी थे। इनके सम्बन्ध में विद्वानोंका विचार है कि वह जैन धर्ममें दीक्षित होकर भूतबली नाम के एक दिगम्बर जैन आचार्य बन गये थे जिन्होंने षट खण्डागम शास्त्र की रचना की थी[3]। मथुरा के प्रसिद्ध जैन पुरातत्व से सिद्ध है कि कनिष्क, हुविष्क और वासदेव शक राजाओं के शासन कालमे जैन धर्म की मान्यता बहुत फैली हुई थी।

मध्यकालीन युग में भी यह धर्म राजपुताने के राठोर, परमार, चौहान और गुजरात तथा दक्षिण के गग, कदुम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य कलचूरी और होलसल आदि राजवन्शों का राजधर्म रहा है। गुप्त आन्ध्र और विजयनगर साम्राज्य काल में भी इस धर्म को राज्य शासकों की ओर से सदा सम्मान मिलता रहा है। यह इन्हीं की सरलता और प्रोत्साहनक फल है कि जैन धर्म मध्ययुगमें श्रमण वेलगोल और कारकल की विशालकाय गोम्मटेश्वरकी मूर्तियों और आबू पर्वत के दिलवाडा मन्दिर, चित्तौड़गढ़ के जनकीर्तिस्थम्भ जैसे लोग प्रसिद्ध स्मारकों को पैदा कर सका है। और समन्तभद्र सिद्ध-सेन दिवाकर, सिद्धसेन गणि, पूज्यपाद देवनन्दी, अकलंक देव, विद्यानन्दी, वीरसैन, जिनसैन सोमदेव, माणिक्यनन्दी, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र, हरिभद्रसूरी, नेमीचन्द्र सि० चक्रवर्ति आदि रचित अनेक साहित्य और दर्शनशास्त्र के अमूल्य रत्नों को जन्म दे सका है।

जैनधर्म और बाहिर के देश

जैनधर्मको न केवल भारतमें, बल्कि भारतसे बाहिर के देशों से भी सम्पर्क रखने, वहाँ पर सम्मान पाने और वहाँ के संस्कृति

---

1 Dr. B C Law Historical Gleanings. 78

2 वीर, वर्ष दो, पृ० ४४६ ४४६

3 बा० कामताप्रसाद-दिगम्बरत्व पृ० १२०

प्रवाहको प्रभावित करनेका सदा गौरव प्राप्त रहा है। महावंश[1] नामक बौद्ध ग्रन्थसे साबित है कि ४३७ ई० पूर्व में सिंहलद्वीप के राजा ने अपनी राजधानी अनुरूद्धपुरमें जैन मन्दिर और जैनमठ बनवाये थे, जो ४०० साल तक कायम रहे। इतना ही नहीं भगवान महावीर के समय से लेकर ईसा को पहली सदी तक मध्य एशिया के अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, फिलिस्तीन, सीरिया आदि देशों के सात अथवा मध्यसागर से निकटवर्ति यूनान, मिश्र, इथोपिया (Ethopia) और एबीसिनिया आदि देशों के साथ जैन श्रमणोंका सम्पर्क बराबर बना रहा है[४]। यूनानी लेखकों के कथन सेजहाँ यह सिद्ध है कि पायेथेगोरस[३] (Pythagoras) पैर्रहो (Pyrrho) डाइजिनेस (Diogenes)

1 Paof Buhler, An Indian Sect of the Jainas p 37

(१) हुवाग स्वांग ने सातवीं सदी में मध्यएशिया के जिस (Caspin) नगर में अनेक निग्रथ साधुओं को देखा था, उसी नगर में सिकन्दर के यूनानियों ने भी अनेक निग्रथ साधुओं को देखा।

(२) आद्रकुमार नामका राजकुमार ईरान देश का वासी था। वह भगवान महावीर द्वारा जैन धर्म में दीक्षित हुआ था, उसने ईरान देश में जाकर जैन धर्म का प्रचार किया और जैन मूर्तियों की स्थापना कराई।

३ Pythagoras ५८० ईसवी पूर्व में पैदा हुए थे इसके अनुयायी एशिया माईनर में आयोनियन सम्प्रदाय के थे। मध्य एशियाके कैसपिय, अमम समरकन्द, बलख आदि नगरों में जैन धर्म का प्रचार रहा है।

४ Dr B C. Law Historical Gleanings. p 42

(आ) प सुदरलाल किवम्वाणी अप्रैल १९४२p ४६५

(इ) Sir William James-Asiatic Researches vol III p 6

(ई) Megasthenes—Ancient India p 104

(उ) बा० कामता प्रसाद-दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि पृ० १११ ११३, २४३

जैसे यूनानी तत्ववेताओं ने भारत में आकर जैन श्रमणों से शिक्षादीक्षा ग्रहण की थी यहाँ यह भी सिद्ध है[4] देखो पेज नं० १३ कि यूनानीबादशाह सिकन्दर महान के साथ भारत से जाने वाले जैन ऋषि कल्याण के समान सैकड़ों जैनश्रमण समय समय पर उक्त देशों मे जाकर अपने धर्म का प्रचार करते रहे हैं और उन देशों में जाकर अपने मठ बनाकर रहते रहे हैं जैन साहित्य से भी विदित है कि मौर्य सम्राट अशोक के पोते सम्राट सम्प्रति ने ईसा पूर्व कीतिसरी सदी मे बहुत से जैन श्रमणोंको जैनधर्म प्रचारार्थ अनार्यदेशों में भिज वाया था[1]।

जैनधर्म और ईसाईधर्म

कितने ही विद्वानों का मत है कि प्रभु ईसाने इन्हीं श्रमणोंसे जो बहुत बड़ी संख्या में फिलिस्तीनके अन्दर अपने मठ बनाकर रहते थे, अध्यात्मविद्याके रहस्यको पाया था। और इन्हींके आदर्श पर चलकर उसने अपने जीवन की शुद्धिअर्थ आत्म-विश्वप्रेम, जीव-दया, मार्दव, क्षमा, सयम, अपरिग्रह प्रायश्चित, समता आदि धर्मों की साधना की थी[2]। इससे भी आगे बढ़कर अनेक प्रमाणिक युक्तियोंके आधार पर अब विद्वानोंको यह निश्चय होता जा रहा कि ईसा जब १३ साल के हुए और घर वालों ने उनकी शादी की सलाह करना शुरु की, तो वह घर छोड कर कुछ सौदागरोंके साथ सिन्धके रास्ते हिन्दुस्तान मे चले आये वह जन्म से ही बड़े विचारक और सत्य के खोजी थे और दुनियाके भोग-विलासोंसे उदासीन थे। यहाँ आकर वे बहुत दिनों तक जैनश्रमणों के साथ भी रहने रहे, बौद्ध भिक्षुओंके साथ भी रहते रहे, फिर वे नैपाल और हिमलय होते हुए ईरान चले गये और वहाँ से अपने देशोंमे जाकर उन्होंने अहिंसा और विश्वप्रेम प्रचार शुरु कर दिया[3]। प्रभु ईसाने अपने आचार-विचार के

१-श्री हेमचन्द्राचार्य कृत परिशिष्ट पर्व श्लोक ६६-१०२

२-प० सुन्दरलाल-हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ० २२

३-प० सुन्दरलाल हजरत ईसा और धर्म । १६२

मूल तत्त्वोंको शिक्षा श्रमणों से पाई थी, इस बात से भी सिद्ध है कि उन्होंने अपने उपदेशों मे जिन तीन विलक्षण सिद्धान्तों पर जोर दिया है वे देवताप्रधान यहूदी संस्कृतिसे सम्बन्ध नहीं रखते, वे तो भारत की श्रमण संस्कृतिके हीमूल अधार हैं। वे हैं आत्मा और परमात्मा की एकता, आत्माका अमरत्व, आत्माका दिव्यजीवन। ईसा सदा अपनेको ईश्वरका बेटा कहा करते थे[1] जब आदमी उन से पूछते कि ईश्वर कहां है तो अपनी ओर संकेत करके कहते कि वह स्वय ईश्वर का साक्षात् रूप है, जो उसे देखते और जानते हैं वे ईश्वर को देखते और जानते हैं[2] चूंकि वह और ईश्वर दोनों एक है[3]। वह अपने उपदेशों में पुनर्जन्म और अमर जीवन के सिद्धान्तों पर भी काफी प्रकाश डाला करते थे। वह कहा करते थे कि यह मेरा पहला जन्म नहीं है, मैं अबसे पहिले भी मौजूद था—हजरत अब्राहमके समयमें भी मौजूद था[4] जो जीवनकी अमरता और पुनर्जन्म मे यकीन करेगा वह कभी नहीं मरेगा[5] बिना पुनर्जन्मके

---

1. Bible ST.-John 5-18
2. „ „ 8-19.
3. „ „ 10-30.
"He that hath seen me hath seen the father, Believeth-those not that I am in the father and the Father in me" ? 14-8-10
("I and my Father are one")
4. Bible-St John. 8-56.59-
(Verily, verily, I say unto, you before Abraham
5. Bible St. John 10-25.
"I am the resurrection and the life, he that believeth in me though, he were dead yet shall he live".

सिद्धान्तों को माने दिव्य साम्राज्यकी भी प्राप्त नहीं हो सकती[1]।
दिव्य साम्राज्य (Kingdom of heaven) से उनकी मुराद
जीवन की उस अवस्थासे थी जब मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं
वासनाओं, कषायोंको विजय करके अपना स्वामी हो जाता है,
जन्म-मरण के सिलसिले को खतम करके अक्षय सुख और
अमृतका मालिक हो जाता है।

ये उक्त सिद्धान्त फिलिस्तीन में बसने वाली यहूदी जातिकी
प्रचलित मान्यताओं से बिल्कुल विभिन्न थे, यहूदी लोग इनके
प्रचार को नास्तिकता समझते थे और इन सिद्धान्तों के प्रचार को
रोकने के लिए वे सदा प्रभु ईसाको ईंट पत्थरों से मारने को
तैय्यार रहते थे। इन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार के कारण प्रभु ईसा
को पकड़कर उनके विरुद्ध अभियोग चलाया गया था और उन्हें
सूली की सजा मिली थी[2]। प्रभु ईसा को अपने जिन आध्यात्मिक
आचार-विचारों के कारण उमर भर अपने देशवासियों से पीड़ा
और यन्त्रणा सहनी पड़ी, वही पीछे से देशवासियों की सद्बुद्धि
द्वारा अपनाये जाकर और देश की पुरानी यहूदी संस्कृति की अनेक
मान्यताओं और प्रथाओं से मिलकर ईसाई धर्म के रूपमें प्रकट
हुए। वास्तव में ईसाई धर्म श्रमणसंस्कृतिका ही यहूदी संस्करण
है।

भारत और जैन संस्कृति

जहां तक भारत का सवाल है, उसके जीवन पर तो जैन
संस्कृति ने बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है, जैसा कि लोकमान्य
तिलक का मत है-इसके अहिंसा तत्वने तो भारतीय रहन सहन
पर एक अमिट छाप लगाई है। पूर्व-काल में यज्ञों के लिये जो

1. Bible-St John 3-3
"Verily verily I say unto you except a man be born again, he cannot see the Kingdom of God.

2 प० सुन्दरलाल-हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ० १३२-१४०

असंख्य पशुओं की बली होती थी वह जैन अहिंसा के प्रचार से ही बन्द हुई है[1]।" इस धर्म नें यहाँ के खान पीन मे भी बहुत बडा सुधार किया। भारत की जो जो जातिया इसके प्रभाव मे आई सभी मांसाहारको छोड़कर शाक-भोजी होती चली गईं। इस धर्म ने भारत के फौजदारी कानूनके दण्डविधान को भी काफी नरम बनाया है। इससे सजाओं अमानुषिक सख्ती और बेरहमी में बहुत कमी हुई है। इस धर्मके कारण दण्डविधानकी जगह प्रायश्चित विधान को विशेष स्थान मिला है[2]। यह अहिंसा धर्म लोगों के जीवन में उतरते उतरते इतना घर कर गया कि उसके विरुद्ध चलनेसे सर्भ को लोकनिन्दा का भय होने लगा। इसी कारणसे महावीर के उत्तरकाल में हिन्दु स्मृतिकारों और पुराण-कारों ने जितना आचार-सम्बन्धी साहित्य लिखा है, उस सब में उन्होंने नरमेध, पशुबलि और मांसाहार को लोकविरुद्ध होने से त्याज्य ठहराया है[3]।

जैनधर्म के आध्यात्मिक विचारों का भी भारतीय संस्कृति पर कुछ कम प्रभाव नहीं पडा है पशुबलि और मांसाहार के बन्द होने से याज्ञिक क्रियाकाण्डों को बहुत धक्का पहुंचा और होते होते वह भी सदा के लिए भारत से बिदा हो गया। उसके स्थानमें सदाचारको बड़ी मान्यता मिली। यम, नियम व्रत, उपवास, दान, सयम ही लोगों के जीवन के पुन. धर्म बन गये। ज्ञान, ध्यान, सन्यास और त्यागी वीर महापुरुषों की भक्तिके पुराने आध्यात्मिक मार्गों का पुनरुत्थान हुआ। महावीर के उपरान्त वैदिक सहिताओं ब्राह्मणग्रन्थों और श्रौतसूत्रों जैसे क्रियाकाण्डी साहित्य की बजाय

---

१ लोकमान्यतिलक–१९०४ में जैन कान्फ्रेंस मे दिया हुआ व्याख्यान

२ ओझाजी–मध्यकालीन भरतीय संस्कृति-पृ० ३४

३ याज्ञवल्क्य स्मृति १-१५६, बृहन्नारदीय पुराण, २२ १२ १६ ओझा जी-मध्यकालीन भा० संस्कृति पृ० ३४

हिन्दुओं में उपनिषद्, पुराण, ब्रह्मसूत्र, गीता योगवासिष्ठ अथवा रामायण जैसे आध्यात्मिक और भक्तिपरक ग्रन्थों को अधिक महत्व मिला। इस संबंधमें बहुतसे विद्वानों का मत है कि हिन्दुओं में जो २४ अवतारों की कल्पना पैदा हुई, उसका श्रेय भी जैनियों की २४ तीर्थङ्कर वाली मान्यता को ही है।[1] खैर कुछ भी हो, इतनी बात तो प्रत्यक्ष है कि इन्द्र, अग्नि वायु, वरुण सरीखे परोक्ष प्रिय मनोकल्पित देवताओंके स्थान मे जो महत्ता भगवान कृष्ण और भगवान् राम जैसे कर्मठ ऐतिहासिक क्षत्रिय वीरोंको मिली है उसका श्रेय भी भारतकी उस प्राचीन श्रमण संस्कृतियों को ही है, जो सदा महापुरुषों को साक्षात देवता अथवा दिव्य अवतार मानकर पूजती रही है।

भारतीय कला और साहित्य में जैन धर्म का स्थान

इन अध्यात्मवादी श्रमणों के उपासक लोगोंमे अपने माननीय तीर्थङ्करोंकी मूर्त्तियाँ और मन्दिर बनाने, उनकी पूजाभक्ति करने और उत्सव मानने की जो प्रथायें प्राचीन काल से जारी थीं उनसे महावीर के उत्तर काल में याज्ञिक क्रियाकाण्डों के उत्सव बन्द हो जाने पर भारत के अन्य धर्म वाले बड़े प्रभावित हुए। ईसा की पहली और दूसरी सदी के करीब हम देखते हैं कि जैनियोंके समान बौद्ध और हिन्दु भी अपने मानीय महापुरुषोंकी मूर्तियाँ और मन्दिर बनाने, उसको भक्ति करनेमे लग गये। उस समय शुरु में बौद्धोंने भगवान बुद्ध और हिन्दुओंने भगवान कृष्ण की मूर्तियाँ निर्माण की। पीछे तो इस प्रथाने इतना जोर पकडा और मूर्तिकलाने इतनी उन्नति की, कि भारतमें ब्रह्मा, शिव पार्वती, गणेश लक्ष्मी, सरस्वती कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य अवतारों, बोधिसत्व आदि अनेक प्रकार की सौम्य मूर्तियों की एक बाढ़ सी आगई। फिर क्या था जैन, बौद्ध और हिन्दु सभी-

---

१ ओझा जी मध्यकालीन भा० संस्कृति १७

धर्मवालों ने अपने अपने महापुरुषों की मूर्तियाँ और मन्दिर बनाकर सारे भारत को ढाँक दिया।

भगवान महावीर ने जमाने के विभिन्न विचारों मान्यताओं में एकता लाने के लिये जिस अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद(Relativity) के सिद्धांतों को जन्म दिया था, उसने भारतीय विचारकों में सत्यको अनेक पशुओं से देखने और जानने के लिये एक विशेष स्फूर्ति पैदा कर दी। इससे भारतको धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त सभी प्रकार का साहित्य सृजन करने में बड़ी प्रगति मिली। महावीरके उपासकोंने तो इस दिशा मे खास उत्साह दिखाया। उन्होंने अपनी स्वतन्त्र रचनायें और टीकायें करके उसे ऊँचा उठाया। इसी लिये (हम देखते हैं कि अन्य धर्मों की तरह जैन साहित्य केवल दार्शनिक नैतिक और धार्मिक विचारों का भण्डार नहीं हैं बल्कि वह इतिहास, पुराण कथा, व्याख्यान स्तोत्र, काव्य नाटक चम्पू छन्द अलंकार, कोष, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष, गणित, राजनीति, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आयुर्वेद, बनस्पति-विद्या, मृगपक्षिविद्या, वस्तुकला मूर्तिकला, चित्रकला शिल्पकला और सगीतकला आदिके अनेक लोकोपयोगी ग्रन्थों से भी भरपूर है। एतिहासज्ञो के लिये जो जैनियोंके साहित्यमें इतनी अधिक और प्रामाणित सामग्री भरी हुई है कि इसके अध्यनसे भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियाँ आसानी से सुलझ सकती है।)

(न्यायशास्त्र के क्षेत्र में तो जैन विद्वानोंकी सेवायें भारत के लिए बहुत ही मूल्यवान है। ईसा पूर्वकी छटी सदी में अक्षपात गौतमने बुद्धिवाद द्वारा भौतिकोंके जड़वादका निराकरण करने के लिए जिस न्यायशास्त्र को जन्म दिय था, उसे गहरे शोध और अनुसन्धान द्वारा पूरी ऊँचाई तक उठाना और उसका अध्यात्मविद्याके साथ सम्मेलन करना जैन नैयायिकोंका ही काम था। ईसाके लिए महा० उपा० सतीशचन्द विद्याभूषण जैसे प्रकांड विद्वानों ने जैन

न्यायकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है उनका कहना है कि ईसाकी पहली सदी मे होने वाले जैनाचार्य उमास्वाति जैसे अध्यात्म विद्याविपद् तथा छटी सदी के सिद्धसेन दिवाकर और अठवीं सदी के अकलङ्कदेव जैसे नैयायिक इस भूमि पर बहुत कम हुए हैं[१]

भारतीय भाषाओं को जैनधर्म की देन

भगवान महावीर की दृष्टि बहुत ही उदार थी और उनका उद्देश्य प्राणी मात्रका कल्याण था, वह अपने सन्देश को सभी तक पहुचाना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने ब्राह्मणोंकी तरह कभी किसी भाषामें ईश्वरीय भाषा होनेका आग्रह नहीं किया। उन्होंने भाषाकी अपेक्षा सदा भावों को अधिक महत्त्व दी। उनके लिए भाषाका अपना कोई मूल्य न था, उसका मूल्य इसी मे था कि वह भावों को प्रकट करने का माध्यम है। जो भाषा अधिकतर लोगों के पास भावों को पहुंचा सके वही श्रेष्ठ है भाषा की श्रेष्ठता उपयोगिता पर निर्भर है, जातीयता पर नहीं। इसलिए उन्होंने अपने उपदेशों के लिए संस्कृत को माध्यम न बनाकर अर्द्धमागधी नाम की प्राकृत भाषा को माध्यम बनाया, जो उस समय हिन्दुस्तानी भाषा की तरह भारत के सभी पूर्वीय और मध्य देशों मे आम लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी। इसी भाषा मे न केवल मगध देश की बोली ही शामिल थी, बल्कि विदेह, काशी, कौशल, मालवा, कौशाम्बी जैसे आस पास के सभी इलाकों की बोलियाँ शामिल थी। भगवान की इस उदार परिणति से भारत की सभी बोलियों को अपने उत्कर्ष मे बड़ी सहायता मिली

---

1 Dr. Winternitz, History of Indian Lit. vol 11—PP. 564. 505.

२ देखो महा० सतीशचन्द्र द्वारा १९१२ में स्याद्वादविद्यालय काशी में दी हुई स्पीच।

है। इसी कारण जैन धर्म भारत के जिन जिन देशोंमें फैला अथवा जिन २ कालों में से गुजरा, यह सदा उन्हीकी बोलियों ज्ञान देता और साहित्यसृजन करता चला गया। इसलिए जैन साहित्य की यह विशेषता है कि यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी शौरसैनी, महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, तामिल तैलगु, कनडो आदि भारत के उत्तर और दक्षिण की, पूर्व और पश्चिम को सभी पुरानी और नई भाषाओं मे लिखा हुआ मिलता है।[1] यही एक साहित्य ऐसा है, जिस से कि हम भारतीय भाषाओं के क्रमिक विकास का भली भाँति अध्यन कर सकते हैं।

उपसंहार और कृतज्ञता

इस तरह भगवान महावीर ने अपने आदर्शजीवन और उपदेश से जिस जैन संस्कृति का पुनरुद्धार किया था उसने भारतीय, सभ्यता साहित्य, कला और भाषाओं के विकास और उत्थानमें बहुत बड़ा भाग लिया है इन भगवान महावीर का, जिसने भारत के विचार को उदारता दी, आचार को पवित्रता दी जिसने इन्सान के गौरवको बढ़ाया, उसके आदर्श को परमात्मवादकी बुलन्दी तक पहुंचाया, जिसने इन्सान और इन्सान के भेदों को मिटाया, सभी को धर्म और स्वतन्त्रता का अधिकारी बनाया, जिसने भारत के अध्यात्म-सन्देश को अन्य देशों तक पहुँचाया और उसके सांस्कृतिक स्रोतों को सुधारा, भारत जितना भी गर्वकरे उतना ही थोडा है।

---

1 Wiuternitz-History of Indian Lit vol 11-pp 594, 595

प्रस्तुत पुस्तक जैन जाति भूषण दानवीर सेठ अमरचन्द जी पाँड्या अध्यक्ष अ० वि० जैन मिशन पलासवाड़ी हाल कलकत्ता के दातव्य द्रव्य से छपकर पाठकों की सेवा में सादर सप्रेम समर्पित।

धन्यवाद

प्रचार मन्त्री

भ० महावीर

और

महात्मा बुद्ध

(तुलनात्मक परिचय)

लेखक—

श्री कामताप्रसाद जैन
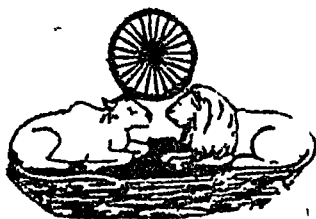
प्रकाशक—

बाबूलाल जैन जमादार

प्रचार मंत्री

श्री अखिल विश्व जैन मिशन

बड़ौत (मेरठ)

तृतीय बार } १९५८ ई० { १५००

भ० महावीर और भ० बुद्ध

साक्यमुनि गौतमबुद्ध ज्ञातृपुत्र तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के समकालीन थे। समकालीन होने के साथ ही दोनों महापुरुषों का कार्यक्षेत्र भी एक था और दोनों के भक्तों में कई राजा भी एक ही थे। श्रेणिक बिम्बसार, अजातशत्रु, उदयन, प्रसेनजित आदि प्रसिद्ध राजा भ० बुद्ध का भी सम्मान करते थे और तीर्थङ्कर महावीर के भी भक्त थे। उन दोनों का प्रारम्भिक जीवन भी बहुत मिलता जुलता था, जिसके कारण किन्हीं पाश्चात्य विद्वानों को दोनों के पृथक और स्वाधीन आस्तित्व में शङ्का भी हुई, किन्तु वह शङ्का निर्मूल थी। जैकोबी और ल्युमानने बौद्ध ग्रंथो के उद्धारण उपस्थित करके दोनों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और मतोंको स्पष्ट कर दिखाया है। प्रो० ल्यूमान ने भ० महावीर और भ० बुद्धको तुलना करते हुये लिखा था कि "ये दोनों महापुरुष अर्हन्त (पूज्य) भगवन्त (प्रभु) और जिन (विजेता) नामों से प्रख्यात् थे। किन्तु महावीर की तीर्थङ्कर संज्ञा उसी प्रकार निराली है जैसे बुद्धकी तथागत। दोनों महापुरुषों के यही नाम अलग-अलग लोकप्रिय और प्रचलित हैं। महावीर 'ज्ञातृपुत्र' और गौतम बुद्ध 'शाक्यपुत्र' कहलाते थे। शाक्यपुत्र होने की अपेक्षा बुद्ध शाक्यमुनि भी कहलाते थे। बुद्ध नामकी अपेक्षा से उनके अनुयायी बौद्ध कहलाये और भ० महावीर की 'जिन' संज्ञा के अनुरूप उनके अनुयायी 'जैन' नाम से प्रसिद्ध हुये।"* किन्तु भ० महावीर की यह विशेषता थी कि उन्होंने किसी नये मत की स्थापना नहीं की! जैनधर्म उनसे पहले भी प्रचलित था।

शाक्यमुनि गौतम जन्म, जरा, मृत्यु आदि का वीभत्सरूप देखकर संसार से भयभीत होते और दुखसे त्राण पाने के लिये एक गुरु की खोजमें घरसे चुप चाप निकलते हैं। अनेक गुरुओं का शिष्यत्व भी वह स्वीकार करते हैं। एक बार उनका समागम तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ जी की परम्परा के निर्ग्रन्थ मुनि पिहिताश्रवसे हुआ और उन्होंने उनसे दिगम्बर जैन मुनि की विचित्र दीक्षा लेकर नीरांजना नदी के तटपर घोर तप तपा।× जैनमुनि होने की बात का उल्लेख स्वयं भ० गौतम बुद्धने निम्न शब्दों में किया है। भ० बुद्ध कहते हैं:—

"वहाँ सारिपुत्र! मेरी यह तपस्विता थी-अचेलक [नग्न] था, मुक्ताचार, हस्ताप-लेखन [हथचट्टा], नएट हिमादिन्तक [बुलाई भिक्षा का त्यागी], न-तिष्ट-भदन्तिक [ठहरिये कह, दीगई भिक्षा को], न अपने उद्देश्य से किये गये को और न निमन्त्रण को खाता था...... न मछली, न मांस खाता और न सुरा पीता था।......शाकाहारी था।......केशदाढी नोचनें वाला था।"-मज्झिम निकाय १।२।२[हिंदी] पृ० ४८-४९

भ० बुद्धकी यह चर्या दिगम्बर मुनिकी चर्याके अनुरुप है। जब मुनिपद के कठोर नियमों और तपको पालने में असमर्थ हुये-उनकी उत्कण्ठा आर्योंके महती और अपूर्व ज्ञानको पाने के

---

* बुद्ध अने महावीर (पूना) पृ० १२—१३

× दर्शनसार-६-

लिये छटपटा उठी, तो वह उन्मुक्त होकर नये मार्ग को ढूंढने के लिये उन्मुख हुये। बोधिवृक्ष की छाया में उन्हे 'बोधि' की लब्धि हुई, जिसके आधार से उन्होंने अपने 'मध्यमार्ग' का उपदेश दिया।

किन्तु ज्ञातृपुत्र भ० महावीर ने दृढ़प्रतिज्ञ होकर-हृदय की प्रेरणा को सुनकर कि 'हे क्षत्रियश्रेष्ठ, उठ जगतके जीवोंके हितके लिये धर्मतीर्थ-चक्र का प्रवर्तन कर!' गृहत्याग का महती अनुष्ठान किया था वस्तुस्वरूप उनके मानसनेत्र मे चमका था, जिसने उनके मोहपाशको शिथिल कर दिया था-परमात्मस्वरूप की शुद्धि और निर्मलताने उनके भावोंको वीतरागता से भर दिया था। ब्रह्मलोक के राजर्षिदेवता भी उनके वीतराग भावसे प्रेरणा लेने के लिये नरलोक में आये। इन्द्र और नरेन्द्रोंने उत्सव मनाकर तीर्थङ्कर महावीर के 'तपकल्याणक' की घोषणा त्रिलोक में की। भ० महावीर सत्यके लिये इधर-उधर भटके नहीं। वह तीर्थङ्कर के सनातन श्रमण-मार्ग के पर्यटक बने और ज्ञान-ध्यान की प्रकर्षता एवं तपश्चरण की महत्ता से आत्मशोधन करके जीवन मुक्त परमात्मा हुये। उनका ज्ञान पूर्ण केवल ज्ञान था उपनिषदों की भाषामें उन्हें 'कैवल्यपद' मिला था। स्वयं गौतम बुद्धने उनके ज्ञान का उल्लेख कई बार किया है-उन्हें कितने ही निग्रन्थ (जैन) मिले जो तीर्थङ्कर की सर्वज्ञता की घोषणा मुक्त कठसे करते थे। * 'मज्झिमनिकाय' (१।२।४, पृ० ५६) मे म० बुद्ध कहते है:—

एक समय महानाम! मै राजगृहमें गृध्र—कूट पर्वत पर बिहार करता था। उस समय बहुत से निगंठक

[=जैनसाधु] ऋषि-गिरिकी कालशिला पर खड़े रहने का व्रत ले······वेदना झेलरहे थे।······उन निगंठो से [मैं] बोला-'आवुसो ! निगंठो ! तुम खड़े क्यों······ तीव्रवेदना झेल रहेहो ! उन निगंठोंने कहा, 'आवुस निगंठ नाथपुत्त (=जैन तीर्थंकर महावीर) सर्वज्ञ-सर्व-दर्शी हैं, आप अखिल ज्ञान-दर्शन को जानते हैं—चले, खड़े, सोते जागते, सदा निरंतर [उनको] ज्ञान, दर्शन उपस्थित रहता है।' वह ऐसा कहते हैं—निगंठो ! जो तुम्हारा पहिले का किया हुआ कर्म है, उसे इस कडुवी दुष्कर क्रिया (तपस्या) से नाश करदो, और जो इसवक्त यहां काय, वचन, मनसे संवृत्त हो, वह भविष्य के लिए पापका न करना हुआ, इस प्रकार पुराने कर्मोका तपस्या से अन्त होने से और नये कर्मोंके न करने से, भविष्यमें चित अन्-आस्त्रव होगा। भविष्य में आस्त्रव न होने से कर्म का क्षय (होगा), कर्मक्षय से दुःखका क्षय, दुःखक्षयसे वेदनाका क्षय, वेदनाक्षयसे सभी दुःख नष्ट होंगे हमे यह विचार रुचता है, इससे हम संतुष्ट हैं'।"

---

* मज्झिम, २।३१, अंगुत्तर० १।२२०,

उपर्युक्त बौद्धग्रन्थों के उद्धरण दोनों महापुरुषों के ज्ञान की तरतमता और प्रतिपादन शैलीको भी स्पष्ट करते हैं। भ० महावीर चूंकि पूर्ण सर्वज्ञ थे इसलिए उनका तत्वनिरूपण स्पष्ट, तर्कसिद्ध और सर्व जीवों के लिये हितकर था। उधर म० बुद्धने सैद्धान्तिक तथ्यों में गहरे न उतर कर दुख को दूर करने के उपाय बताने पर जोर दिया और अष्टाङ्गक मध्यमार्ग का निरूपण किया। दोनों का उद्देश्य लोकका हित साधना था।

किन्तु भ० महावीर और म० बुद्धके जीवनों पर विचार करते हुए एक बात अद्भुत दृष्टि पड़ती है। वह यह कि यद्यपि दोनों महापुरुष एक ही क्षेत्र में विचरने रहे, परन्तु उनका कभी परस्पर में साक्षात् नहीं हुआ। बौद्धग्रन्थों में अनेक उल्लेख मिलते हैं जिन मे ज्ञातृपुत्र महावीर के शिष्यगण म० बुद्धसे चर्चा-वार्ता करते दर्शाये गये है और उनमें वही निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र महावीर को निगठों (जैन श्रमणों) की बड़ी परिषद् के साथ विहरते भी लिखा है: * परन्तु ऐसा * मज्झिम० उपालिसुत्त (पृ०२२२) आदिमें(विशेष के लिये हमारे 'भ० महावीर और म० बुद्ध' देखिये)। कोई उल्लेख नहीं कि जिससे उनका मिलना स्पष्ट हो।

बौद्ध ग्रन्थों में जैन सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया गया है। 'दीर्घनिकाय' (सामञ्ञफल-सुत्त) मे एक प्रसग है कि सम्राट् अजात शत्रु ने अन्य मत प्रवर्तकों के साथ साथ भ० महावीर से साधु जीवन के लाभ अथवा श्रामण्य-फल के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'हे राजन्। एक निर्ग्रन्थ साधु चतुर्याम-सवर से संवरित होता है।' (निगण्ठों चातुयाम-सवर संवुतो होति) वह चातुयाम इस प्रकार है. (१) सर्वजल से विरत (सब्ब-वारी-वारितो), (२) सर्व पाप से दूर (सब्ब-वारी युतो)

(३) सर्व पापको धो डाले हुये—(सव्व वारी-धुतो) और सर्व पापको रोक कर पूर्ण जीवन विताने के रूप है। (सव्व-वारी -पुट्ठो चे) इस कारण एक निर्ग्रन्थ गतत्तो (अन्तिम ध्येयको पहुँचा हुआ) यतत्ते (संयम प्राप्त) और थित्तत्तो (स्थिरचित्त) होता है। इस उल्लेख के आधार से विद्वज्न कहते हैं कि इस वौद्ध उद्धरण में तीर्थंकर पार्श्व के चार-पृतों (चाउज्जाम-वय) का का उल्लेख है जैसे कि श्वेताम्बरीय ग्रन्थों मे लिखा है। किन्तु उपर्युक्त उद्धारण में व्रतों का उल्लेख नाममात्र को नहीं है। इसलिये डा० हीस डेविड्सने स्पष्ट लिखा है कि भ० पार्श्व के चातुर्या-व्रत नहीं हो सकते ! × निस्सदेह वौद्ध ग्रन्थों के यह उल्लेख जैनधर्म के प्राचीनरूप को जानने के लिये उपयोगी है।

यद्यपि म० वुद्धने भी भ० महावीर के समान ही अहिसा द्वारा जीवरक्षा और मैत्रीका उपदेश दिया था, परन्तु उनका विवेचन आहार के विषय मे स्पष्ट न था। यही कारण है कि जैन तो पूर्ण अहिंसक रहे, परन्तु वौद्धलोग मृतमांस ग्रहण करने लगे।

आज यद्यपि भारत में वौद्ध प्राय: निशेष हैं, परन्तु वह चीन, जापान, श्याम, तिव्वत आदि देशों में फैला हुआ है। जैनधर्म यद्यपि आज केवल भारत मे ही मिलता है, एक समय

× भ० महावीर और म० वुद्ध (सूरत) पृ० २२४ (विशेष के लिये यह पुस्तक पढ़िये)

वह भी दूर-दूर देशों तक फैला हुआ था। उपरान्त जैनधर्म के प्रसारको बौद्धधर्मने क्षीण कर दिया था। इसका मुख्य कारण संभवत यह था कि भ० महावीर का निर्वाण म० बुद्ध के जीवन काल मेहो गया था, जिससे म० बुद्धको अपने धर्म को सुगठित और प्रसारित करने का अवसर मिला था। उधर जैन सघ वीर निर्वाण के थोडे समय पश्चात् ही आंतरिक भेदों से छिन्न भिन्न हो चला था। अत. जब घर मे ही जैन सगठित न रहे तो विदेशों में फैले हुये जैनों की सारसंभाल कैसे करते? विदेशों की बात तो दूर स्वयं भारत मे ही जैनों के प्राचीन स्थान और कलाकृतियाँ सुरक्षित न रहीं। किन्तु दोनों महा-पुरुषों का महत्व तो उनकी शिक्षाओं के अध्ययन में गर्भित है। प्राचीन बौद्धधर्म जैन के कितना निकट था, इसके लिये दोनों धर्मों के साहित्य का अध्ययन वाञ्छनीय है।

उदाहरण के रूप में कुछ नमूने देखिये—

जैन	बौद्ध
'हे पुरुष। तु ही तेरा मित्र है। तेरी आत्मा ही तेरी शरण है। तू उसे वशकर।' × × × जीवात्मा स्वयं ही वर्त	'आत्मा ही आत्मा के लिये शरण है। दूसरा और कौन शरण हो सकता है? पूर्ण संयासी आत्मा ही दुर्लभ शरण को प्राप्त होती है!'—(धम्पद पृ० ११७)

जैन

मान में अपने विकास का अधिकारी है। पवित्र आत्मा ही को आत्मा का ज्ञान होता है-श्रद्धा होती है। वह आत्मा महान् है, अतीन्द्रिय है।'

(प्रवचनसार)

× × ×

'हे मुनि! जब तू आत्मा द्वारा आत्मा का ध्यान करेगा, तब निर्वाण को पायेगा। यदि पर को आपा मानेगा संसार में रूलेगा।' —(योगसार १२)

× × ×

एक विचक्षण मुनि अपनी आत्मा के समान सभी जीवों को मानता है। वह जो अभी गृहवासी है उसे भी जीवों के प्रति दयालु होना चाहिये। हम सबके प्रति समता का व्यवहार करें।'

—(सूत्रकृताङ्ग)

× × ×

अपने क्रोधको मधुर क्षमासे जीत, मान को विनय से, माया को सत्य-व्यवहार द्वारा और लोभको शांति और सतोप से वश में कर।'

—(दशवैकालिक)

बौद्ध

आत्मा द्वारा आत्मा (self) जागृत कर। आत्मा से ही आत्म की परीक्षा कर। इस प्रका आत्मा द्वारा सुरक्षित होने प और मन को वश मे रखने से, भिक्षु! सुखीजीवन वितायेगा।

—(धम्मपक SBF' २३५-४०)

× × ×

जबतक भिक्षु जागरूक रह कर ध्यान, शांतिभाव और वस्तु परीक्षण आदि करेंगे, वे समृद्ध होंगे, और पतन से दूर।

—(दीघनिदाय २।७६-८०)

× × ×

जो मैं हूँ सो ये हैं, जो ये हैं सो मैं हूँ। सबको आत्मवत् मान किसी की हिंसा न कर और न करा

—(महावग्ग ३)

× × ×

'हे भिक्षुओ! काय, वचन और मन से शान्त बन। जो कोई मध्यमार्ग में दृढ़ संयमी है और जिसने इच्छाओं को जीता है वह 'शात' कहलाता है।'

(—धम्मपद १५७)

इतिशम्

प्रस्तुत ट्रैक्ट

श्री न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया एम. ए.

दि० जैन कालेज बड़ौत (मेरठ) ने सिद्ध चक्र के

पाठ के उपलक्ष में छपवाकर

अहिंसा सप्ताह में

भेंट किया।

धन्यवाद

भारत प्रिंटिंग प्रेस बड़ौत

पंक्ति तीसरा उपहार

जैनों से

और सत्यसाधना की दृष्टि से जैनों के कल्याण के लिये
श्री सत्यभक्त जी का अनुभव मूलक अनुरोध

(संगम ग्रन्थमाला का २१ वां पुष्प)

लेखक
स्वामी सत्यभक्त

प्रकाशक
लालजीभाई सत्यस्नेही
प्रकाशक—संगम, सत्याश्रम वर्धा

मुद्रक — सदाशिव गोमासे, मैनेजर सत्येश्वर मुद्रणालय वर्धा

जुनी ११९६५ इतिहास संवत् मई १९६५ ई

: मूल्य ४० नये पैसे :—

—: निवेदन :—

यह पुस्तिका एक कडवी दवा है जिसे देते हुए कुछ सकोच होरहा है। यह भी जानता हू कि इस कडवी दवा के देने से फीस तो मिलेगी नही, निन्दा और असहयोग ही मिलेगा। कई महानुभाव मेरे पास आते रहते हैं और सुनाते रहते हैं कि देखो, अमुक की पूजा प्रतिष्ठा किस प्रकार होरही है। जहा जाते हैं लाखो पा जाते हैं, लाखो खर्च करा लेते हैं। अमुक के पीछे बडे बडे श्रीमान घूमते हैं आदि। परम्परा के या लोक रुचि के अनुसार जो बोलते हैं, शब्दाडम्बर या बाह्याडम्बर जो दिखाते हैं, लोगो के साम्प्रदायिक अहकार को जो खुराक जुटा देते हैं, असयमी और भ्रष्ट जीवन की जिम्मेदारी से मुक्त रहने का जो सन्तोष पैदा करा देते हैं, वे लाखो पासकते हैं, खूब प्रतिष्ठित पूज्य होसकते हैं परन्तु वे समाज का या देश का कल्याण नही कर सकते। लोगो को सन्मार्ग मे कर्मण्य नही बना सकते। मिथ्यात्व से नही छुडा सकते। उनका परलोक नही सुधार सकते। धन श्रम समय आदि की बर्बादी नही रोक सकते।

वैभव प्रतिष्ठा यश मुझे बुरे नही लगते, भीतर लालसा रखते हुए भी इनके विषय में अनिच्छा प्रगट करने का ढोग भी मैं नही करता फिर भी सत्य या लोककल्याण के बलिदान पर इन्हे पाने की कभी इच्छा नही होती। सत्य और लोक कल्याण के मार्ग में रहकर गरीबी, निन्दा असहयोग आदि सहने की वृत्ति है, क्षमता भी है। इसीलिये यह सन्देश या आत्म-निवेदन लिखा जासका है। इसी तरह के सन्देश हिन्दुओ मुसलमानो ईसाइयो बौद्धो आदि को भी देना है। वे धीरे धीरे प्रकाशित होंगे।

यह सन्देश जैन लोग ठडे दिल से पढें। अगर जैनधर्म ने उन्हे कुछ भी नि:पक्ष विचारक बनाया हो तो स्वपर कल्याण की दृष्टि से इस-पर विचार करें, मोह पर विजय प्राप्त करे। नि सन्देह मोह की महिमा अपार है पर विवेक या सम्यक्त्व की महिमा भी कम नही है। मानव जीवन की विशेपता या उपयोगिता मोह नही है, विवेक या सम्यक्त्व है। चुन लीजिये आप किसे चुनना चाहते हैं। सामग्री आपके सामने है।

२४ जिन्नी ११९६५ इतिहास सवत्

२१-३-६५

सत्यभक्त

सत्याश्रम वर्धा

जैनों से

(जैन भाई बहिनों को सुनाई गई अपनी कहानी)

—: दिया गया सन्देश :—

प्रिय जैन बन्धुओ और बहिनो ?

आप लोगो में से जो भी मुझे जानते है उन्हे इस बात का आश्चर्य होगा कि जैन कुल मे जन्म लेकर, जैन सस्थाओ में मुख्य शिक्षण प्राप्तकर और १७–१८ वर्षो तक जैनसस्थाओ मे ही अध्यापन कार्य कर, दूसरे धर्मो से कोई आर्थिक या सामाजिक विशेष सम्बन्ध न आनेपर भी मै जैनधर्म से अलग क्यो होगया ? अलग होजाने पर भी जैन समाज के लोगो ने किसी जैनसस्था के चलाने के लिये लाखो रुपयो का पक्का वचन देकर, खास कर ऐसी सम्पन्न सस्था की मुझे मालिकी देने की बात कहकर फिर वापिस बुलाना चाहा फिर भी वापिस क्यो नही गया ? यह भी नही है कि मैने किसी और अधिक सम्पन्न या बहुसख्यक समाज का सहारा लेकर विशाल क्षेत्र में स्थान बनाया हो या वैभव कमाया हो इसलिये जैनधर्म छोडा हो। जैनधर्म छोडकर मैं किसी दूसरे धर्म मे भी नही गया। यह बात भी नही है कि किसी एक या अनेक कारणो से मुझे जैनधर्म से या जैन समाज से द्वेष हुआ हो या प्रतिक्रिया हुई हो इसलिये जैन धर्म छोडा हो। आज भी मैने अपने धर्म के मन्दिर में महावीर स्वामी की भी मूर्ति रक्खी है और उनके सन्मान मे प्रार्थनाएँ भी बनाई है। और महावीर जयन्ती या पर्युषण आदि में जब भी बुलाया जाता हू तब चला जाता हू इससे इस बात का भी पता लग जाता है कि मुझे जैन धर्म या जैनसमाज से कोई द्वेष या असहयोग नहीं है। बल्कि एक बार एक श्रीमान ने जब इस बात का दु ख प्रगट किया कि "आप सरीखा असाधारण विद्वान जैनसमाज से चलागया इस बात का मुझे बडा दर्द होता है" तब मैने विनोद मे उत्तर दिया कि आप मुझे जैन समाज का लडका नही लड़की मानले जो विवाह के बाद घर

छोड समुराल चलीगई। उसका कार्य क्षेत्र वदल गया फिर भी पीहर का रिश्ता तो हैं ही।

कहने का मतलव यह है कि जैनशास्त्रो का अच्छा जानकार होने पर भी, जैन धर्म या जैनसमाज से कोई प्रतिक्रिया न होने पर भी, जैनसमाज से लाखो रुपयो की सहायता का पक्का आश्वासन पाने पर भी, किसी दूसरे धर्म या समाज के किसी प्रलोभन में न फसने पर भी, मैंने जैनधर्म क्यो छोड दिया? और आज तीस वर्ष की घोर तपस्या और श्रम करने पर भी आज मै गरीव हू और मुश्किल मे मुट्ठीभर आदमी ही मेरे साथ है, फिर भी मै सन्तुष्ट हू, अपनी राह से तिलभर भी हटने को तैयार नही हूँ, इन सव का कारण क्या है? इन सव वातो का खुलासा करने के लिये और आपका आश्चर्य दूर करने के लिये मैं अपनी कहानी आप लोगो को सुनारहा हू। आप वह सुने सोचे, समझें, फिर जिसमें अपना कल्याण समझें, करे।

निष्पक्षता के संस्कार

मेरे इस परिवर्तन का मुख्य कारण जैनधर्म के द्वारा दीगई विचारकता और निष्पक्षता है। वाल्यावस्था से ही मै अपनी धार्मिक कट्टरता के पोषण के लिये गाया करता था —

" वुधजन पक्षपात तज देखो, साँचा देव कौन है इनमें "

इसमें सव धर्मो के देवो की तुलना कर, वल्कि उनकी निन्दा कर अरहन्त देव की सच्चाई स्थापित की जाती थी। परन्तु इसका मूल आधार रहता था " पक्षपात तज देखो! " इस प्रकार निःपक्षपात वनकर देखने की भावना और उसके गौरव की छाप वाल्यावस्था से मेरे मनपर पडी। वाद में जव वडा हुआ, शास्त्रो का अध्ययन किया, तव वहा भी यही वृत्ति पनपी।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचन यस्य तस्य कार्यं परिग्रह ॥

मुझे न महावीर मे पक्षपात न कपिल आदि में द्वेष, जिनकी वात जचे

वही मानना चाहिये ।

इससे भी यही बात पनपी । जैन न्याय के अध्ययन में देखा कि जैनाचार्य तर्क के वलपर सब का खडन कर जैन मान्यता की स्थापना करते है । उनकी इस वृत्ति से भी मुझे विचार में निष्पक्षता के वीज मिले । और मेरा यह दृढ विश्वास होगया कि मै जैन इसलिये हू कि वह तर्क की कसौटीपर निर्दोप और अकाटय सिद्ध होरहा है ।

अपनी इस निष्पक्ष मनोवृत्ति के कारण मुझे अपने ब्राम्हण अध्यापको की वुद्धि पर तरस आया करता था । मेरे मुख्य गुरु तो प. गणेशप्रसाद जी थे, जो वाद में वर्णी जी के नाम मे विख्यात हुए, जिन्हे हम वडे पडित जी कहा करते थे । परन्तु उनको भी न्यायशास्त्र पढाने वाले सागर में सहदेवझा जी थे, जिनने वाद में मुझे भी न्याय शास्त्र पढाया था । और वडे पडित जी को बनारस में अम्बादास जी शास्त्री ने पढाया था । मेरे वनारस पहुँचने पर उनने मुझे भी पढाया । मुझे आश्चर्य होता था कि ये लोग जैन न्याय के इतने जानकार होनेपर भी अभी तक जैन नही वनपाये ? कैसा घोर दुर्भाग्य है इनका कि सत्य आखो के सामने है फिर भी ये लोग उसे अपना नही पाते । वाद में फरवरी सन् १९१९ में जब मै वनारस के स्याद्वाद विद्यालय में अध्यापक हुआ तव मै एक पक्का जैन पडित था । और चार पाच वर्ष तक मै ऐसा ही कट्टर जैन पडित वना रहा । इस वीच समाज सुधार सम्वन्धी विचारो में जरूर क्रान्ति हुई । मै जातिपाति का विरोधी, विधवाविवाह का समर्थक, तथा वहुतसी रूढियो का विरोधी वनगया । इन वातो को लेकर आन्दोलन भी किये परन्तु जैनधर्म पर तो मेरी श्रद्धा वनी ही रही ।

यह श्रद्धा मेरी कव डिगी उस तिथि तारीख का तो मुझे पता नही है परन्तु ज्यो ज्यो दुनिया का आधुनिक साहित्य पढता गया, विचारकता निष्पक्ष होती गई त्यो त्यो मेरी धार्मिक कट्टरता दूर होती गई । और सन् १९२४ की डायरी में मैने एक दिन (७ जुलाई को) लिखा कि " बहुत दिनो से मतों पर से मेरी श्रद्धा उड रही है । जैन मत मे भी वहुत ही त्रुटियाँ नजर आती हैं । मेरी इच्छा है कि आजीविका से

स्वतन्त्र होजाऊ और खूब ज्ञानोपार्जन करू। यदि दोनों में सफल हुआ तो सत्यसमाज की स्थापना करूगा। हम सरीखे क्षुद्र जीव भला क्या सफलता प्राप्त करेंगे लेकिन उसके लिये जितना भी क्षेत्र तैयार होजायगा भविष्य की सन्तान को उतना ही सुभीता होगा। सत्यसमाजी को राष्ट्रीयता और संकुचित धर्मों से परे रहना चाहिये। जो सत्य जँचे वही करे और अपना जीवन सदाचार पूर्ण बनावे, रूढियों का गुलाम न रहे।"

इतना होने पर भी जैनधर्म के विषय में मोह और पक्षपात बना ही रहा। मैं अवैज्ञानिक धर्म तो पसन्द करता नही था इसलिये मेरा प्रयत्न यह हुआ कि जैन धर्म को पूर्ण वैज्ञानिक धर्म बनादिया जाय। जैन धर्म में जो त्रुटियां मालूम हो उन्हें उसमें शामिल कर दिया जाय और जो अवैज्ञानिक या अनुचित मालूम हो वह अलग कर दिया जाय। ढाचा जैन धर्म का रहे और पारिभाषिक शब्द भी पुराने रहें परन्तु जो जोड़ तोड जरूरी मालूम हो वह सब कर दी जाय। और इस तरह परिवर्तित जैनधर्म दुनिया के सामने पेश कर दिया जाय और कहा जाय कि यह है जैनधर्म, जिसे कोई किसी तरह नही काट सकता। इसी के लिये मैंने लम्बी लेखमाला 'जैनधर्म का मर्म' के नाम से लिखी जो पीछे से तीन खंडो में जैनधर्म मीमांसा के नाम से प्रगट हुई।

यह सब प्रयत्न मैं जैनधर्म के मोह के कारण कर रहा था। परन्तु बाद में दो कारणो से यह प्रयत्न ठीक न मालूम हुआ। (एक तो यह कि एक दिन अकस्मात् मेरे मन मे यह विचार पैदा हुआ कि मैं जैन पिता के यहा पैदा होगया इसलिये जैनधर्म के मोह के कारण उस-पर सच्चाई की छाप लगाना चाहता हू। पर दूसरे धर्मवाले पिता के यहा पैदा होजाता तो उसी धर्म के गीत गाता। जो लोग दूसरो के यहा पैदा होगये वे दूसरे धर्मों के गीत गाते हैं। पर इससे सच्चाई कैसे सिद्ध होसकती है। सच्चाई को देख परखकर मैंने किसी खास धर्म वाले को बाप के रूप में नही चुना। तब यह सत्य की खोज का तरीका न हुआ कि जन्म के कारण किसी धर्म को खींचतानकर अदल बदलकर सच्चा सिद्ध किया जाय।)

दूसरा कारण यह था कि जैन धर्म के इस कायाकल्प में जैन धर्म का ढाचा और उसकी मूल बातें भी इतनी बदल जाती थी कि वह कहने मात्र का जैनधर्म रहजाता था। इस ढग से तो किसी भी धर्म को परिवर्तित कर उसे सत्य सिद्ध किया जासकता था। फिर जैन धर्म का ही मोह क्यो?

इन दोनो विचारो से नया धर्म या नया समाज स्थापित करने की आवश्यकता मालूम हुई। और सन् १९३४ में सत्यसमाज की स्थापना की। इसमें धर्म तो नया था परन्तु अन्य सभी धर्मो का भी सन्मान था। सब के देवताओ को पूजने की योजना थी। यही कारण है कि सत्य-समाज के सत्यमन्दिर में महावीर स्वामी की भी मूर्ति विराजमान है।

यह सब कहानी मैने आपको इसलिये सुनाई कि आपको मालूम हो कि मैने जैनधर्म छोडा वह किसी प्रतिक्रिया के कारण नही, उतावली में भी नही। वर्षों के चिन्तन मनन और निष्पक्ष विचारणा के पश्चात् स्वपर कल्याण की दृष्टि से मुझे यह कार्य करना पडा। सभी धर्म युग-बाह्य और अवैज्ञानिक होने के कारण नये धर्म की या नये समाज की स्थापना करना पडी। फिर भी किसी धर्म का अपमान नही किया किन्तु पूर्वज के समान सभी का सन्मान रक्खा।

इतनी प्रस्तावना के बाद मैं आपको बताना चाहता हू कि वे क्या बाते है जिनके कारण जैनधर्म में मुझे सन्तोष न रहा। और मुझे नया धर्म खडा करना पडा।

आखिर हम किसी धर्म को अपनाते है तो अपने और जगत के भले के लिये अपनाते है। हम सच्चाई के आधार से ठीक ठीक ढग से कर्तव्य का निर्देश पासके इसीलिये धर्म है। कर्तव्यनिर्देश ठीक हो, उसकी उपपत्ति ठीक हो उसका आधार ठीक हो तो उससे हमारा और जगत का कल्याण होगा। जैनधर्म जब स्थापित हुआ तब उस समय के समाज की एक या अनेक बुराइयो की दृष्टि से उसका कुछ उपयोग जरूर रहा होगा परन्तु आज उसका उपयोग कितना है, उसमें कितनी

सच्चाई है, इसपर निष्पक्ष विचार किये विना हम अपना और जगत् का भला कैसे कर सकते है ?

किसी भी चीज को जब हम अपनाते हैं तब उसमें अपने लाभ का विचार तो करते ही है । इसी तरह मैं आपसे कहता हू कि अपने लाभ की दृष्टि से ही जैनधर्म पर विचार कीजिये । यदि लाभ मालूम हो तो खुशी से अपनाइये या अपनाये रखिये । किन्तु यदि यह मालूम हो कि मोह वश हम बहुतसे असत्यो को अपनाये हुए है तो उन असत्यो का त्याग करना ही हमारी समझदारी और मनुष्यता है ।

जैनधर्म कसौटी पर

जैनधर्म की खास रूप रेखा यह है कि यह ससार दुःखमय है । इसलिये इस ससार से छूटने का उपाय करना चाहिये । और वह है सन्यास । घर का त्याग करके घोर तपस्याओ से कर्ममल को दूर कर तीन लोक के ऊपर सिद्धशिला पर शरीर रहित होकर विराजमान हो-जाना मोक्ष है । प्रवृत्ति से बँधता है, निवृत्ति से छूटता है । ससार में कोई किसी का साथी नही, रिश्ते सब झूठे है । अपना उद्धार करने के लिये सब से ममता का भी त्याग करना चाहिये । इस पाचवें आरे में मोक्ष तो किसी को मिलता नही किन्तु निवृत्तिवाद का सहारा लेकर पाप हटाया जासकता है । उससे स्वर्ग मिलेगा । स्वर्ग पृथ्वी से ऊपर एक लाख योजन से शुरु होजाता है और असख्य योजनो तक चला जाता है । वहा विषयभोग की अटूट सामग्री है । एक एक देव को कम से कम बत्तीस देवागनाएँ है । पृथ्वी से नीचे नरक है । इन सब बातो का पता केवल ज्ञानी को होता है । क्योकि वह ब्रम्हाड की हर वस्तु का हर अवस्था का प्रत्यक्ष सत्यदर्शी होता है । उसने जो भी कहा है सब पूर्ण सत्य है ।

यही सब जैन धर्म का ढाचा है । इसी के आस पास इसी के अनुकूल अन्य बाते चित्रित की गई है । आचार के विधान भी इसी तरह के बनाये गये । कथासाहित्य भी इसी तरह का चित्रित किया गया । और उन सब बातो को आप सत्य मानकर चलते है । मैं भी चलता रहा हू, मानता रहा हू । फिर भी मुझे चोट पर चोट लगती गई । जिन बातों

को मोहवश सत्य समझता था वे तीव्रता से खंडित होती गई। इतना ही नही कि सन्देहास्पद बनी हो, किन्तु बिलकुल उल्टी सिद्ध हुई है। ऐसी अवस्था में जानबूझकर मक्खी कैसे निगली जासकती है और क्यो निगलना चाहिये। अगर सिर्फ सन्देह ही मालूम हो तो आप उसका लाभ पुरानी मान्यता को दीजिये। परन्तु यदि बात उल्टी मालूम हो, पूरी तरह गलत सिद्ध होती हो तब भी उसका त्याग न करना अपने को धोखा देने की पराकाष्ठा है। जैनधर्म की प्राय सभी बातो पर मैंने चिन्तन मनन किया है और उसके फलस्वरूप जिस परिणाम पर पहुँचा उसी का सक्षिप्त रूप आपके सामने रख रहा हू। आपको यदि पूरी तरह जचजाय तो मेरी बात मानिये। यदि आधी जचे या सन्देह रहे तो अपनी पुरानी मान्यता पर टिके रहिये। आखिर अपने भले बुरे के मालिक आप ही हैं। जिसमें भला समझें करे। यहा तो मैं अपने मनन चिन्तन की कहानी काफी सक्षेप रूप में आपके समक्ष रख देता हू।

विश्वरचना

१- जैनधर्म ने जम्बूद्वीप को एक लाख योजन व्यास वाला थाली के समान माना है इसके बाद असख्य समुद्र और द्वीप एक दूसरे को बेडते हुए है। इसप्रकार यह सारा मध्यलोक अरबो खर्बो योजनो का है और चपटा है। इसके ऊपर स्वर्ग है और नीचे नरक है। लेकिन अब यह हर तरह प्रमाणित होचुका है कि पृथ्वी आठ हजार मील के व्यास का सन्त्रे की तरह का एक गोला है। जिसके दसो तरफ ऊचा ही ऊचा है। नीचे अर्थात् उसके भीतर तो पिघला हुआ लावा है। चन्द्र सूर्य ज्योतिष देवो का निवास नही किन्तु जीवधारियो से शून्य गोले हैं। सूर्य तो इतना गरम गोला है कि वहा कोई चीज ठोस या तरल रूप में भी नही रहसकती। गरमी के कारण सब गैस के रूप में है। और चन्द्रमा प्रभाहीन ऊबडखाबड जलहीन वायुहीन निर्जीव बिलकुल सूखा गोला है। उपग्रहो के द्वारा डेढ घटे में पृथ्वी की परिक्रमा से, चन्द्रमा के पास जाकर लिये हुए फोटो से ये सब बाते इतनी अधिक प्रमाणित हो चुकी हैं। विश्वब्रह्माड विषयक जैनधर्म का ढाचा स्वर्ग नरक आदि की रचना

में सचाई का एक कण भी वाकी नही वचा है। इतने स्पष्ट नग्न असत्य का सहारा लेकर जीवनचर्या वनाना किसी मनुष्य को कैसे शोभा देसकता है, और कैसे उससे उसका कल्याण होसकता है ।

सर्वज्ञता

२– कहागया कि महावीर सर्वज्ञ थे । तीनकाल तीनलोक का उन्हे युगपत् प्रत्यक्ष होता था । यह मान्यता एक तो तार्किक आधार पर नही टिकती , क्योकि वहुतसी चीजो का जव एक साथ प्रत्यक्ष होता है तब उसकी समानता ही मालूम होती है विशेषता दव जाती है , फिर जव वस्तु अनन्त है, क्षेत्र अनन्त है और काल भी अनन्त है तव किसी चीज को पूरा कैसे जाना जासकता है । क्योकि पूरा जान लेने पर तो उसकी अंतिम सीमा भी जान लेना पडेगी, और जव अंतिम सीमा है ही नही तव उसे कोई पूरा जानेगा क्या ? फिर जो चीज अभी है उसका प्रत्यक्ष सम्भव है, जो अभी है ही नही उसका प्रत्यक्ष कैसे होगा । भूत और भविष्य की अवस्थाएँ अभी है ही नही तब वे आत्मा में कैसे झलकेंगी ? फिर आत्मा अमूर्तिक है उसमे मूर्तिक पदार्थ कैसे झलकेंगे । झलकने का अर्थ यह कि एक तरह का चित्र बने जैसे दर्पण में वनता है । पर अमूर्तिक में चित्र वनना कैसे सम्भव है । हर पदार्थ अपने स्वरूप में है । आत्मा चेतन है तो वह अपने स्वरूप का सवेदन करेगा दूसरे पदार्थो का सवेदन कैसे करेगा हा ! बन्ध के द्वारा दूसरे पदार्थ यदि उसमें मिल जायँ जैसे आत्मा और शरीर मिले हैं तव दूसरे पदार्थों का सवेदन सम्भव है परन्तु सारे पदार्थ किसी आत्मा से कैसे भिड सकते हैं । इसप्रकार के वहुतसे अकाटच तर्क है जिससे सर्वज्ञता बनती ही नही ।

खैर ! इन तर्कों की बात जाने दें । ये विद्वानो के समझने की बाते है । परन्तु जिन लोगो को पृथ्वी के आकार का भी पता नही था । उसकी गति का पता नहीं था, सूर्य चन्द्र के विषयमें आज की अपेक्षा साधारण जानकारी भी नही थी । जो सोचते थे कि ये विमान है जिन्हें नाना पशुओ का आकार धारण करनेवाले देवता खीचते हैं । जो समुद्र में आनेवाले ज्वारभाटा का भी कारण न जानते थे । कहते थे पाताल में देवता

नाचते कूदते है उनकी हवा से समुद्र मे ज्वार आजाता है। जो कहते थे कि समुद्र का पानी बीच में धरातल से एक हजार योजन ऊंचा है। पृथ्वी की गोलाई के कारण जो बीच में उचाई का भ्रम होता है उससे भी जो पृथ्वी की गोलाई का अनुमान न करसके उसे समुद्र की उचाई समझते रहे। कहने को दृष्टिवाद अंग में सारा ज्ञान विज्ञान भरा है परन्तु महावीर स्वामी के प्रवचनो को सुरक्षित रखने के लिये जो टेप-रिकार्ड या तवे नही वनवासके और दो तीन पीढियो मे ही वह भूल-गया। इन सब बातो के देखने से क्या कोई कह सकता है कि महावीर स्वामी या उस युग का कोई दूसरा महामानव सर्वज्ञ था। सर्वज्ञ तो क्या साधारण विशेषज्ञ भी तो सावित नही होता। इतना ही नही वह सत्यज्ञ की अपेक्षा असत्यज्ञ ही अधिक सावित होता है।

मै मानता हू कि इसमें उनका कोई अपराध नही, सर्वज्ञ न होने पर भी वे महामानव थे, पूज्य थे, यह कहने में भी कोई आपत्ति नही, उस जमाने में उनने जो कहा उससे जनता को लाभ ही हुआ, उसके चरित्रसुधार को बल मिला इसलिये उनके प्रति कृतज्ञ भी हू। परन्तु न तो उन्हे सर्वज्ञ माना जासकता है न आज उनकी बातो को आधार बनाकर जीवनचर्या बनाई जासकती है। उसके विषय में अलग ही चिन्तन करना पडेगा।

मोक्ष

३– सारा प्रयत्न मोक्ष के लिये है। मध्यलोक से ऊँचे की ओर सब स्वर्गो के अन्त में सिद्धशिला है। उसके ऊपर मुक्तात्माएँ अनन्त काल के लिये स्थिर है। पहिले तो वह ऊर्ध्वलोक ही गलत होगया है। क्योकि सत्रे की तरह गोल पृथ्वी पर ऊर्ध्वलोक की कल्पना किसी एक दिशा में नही दसो दिशाओ में होगी। और घूमती हुई पृथ्वी पर ऊर्ध्वलोक प्रतिक्षण बदलता जायगा। धार्मिक लोगो द्वारा बतलाई गई जब सारी ब्रह्माड रचना ही गलत है तब ऊर्ध्वलोक, सिद्धशिला और मुक्तात्माओ का स्थान का कोई अर्थ ही नही रह जाता। इस प्रकार मोक्ष की मान्यता का एक बहुत बडा आधार समाप्त होजाता है।

फिर जरा यह भी तो सोचे कि जीवराशि मे से अगर राशि घटती ही जायगी या घट रही होती तो अभी तक ससार में एक भी प्राणी न होता, या आगे न रहेगा। क्योकि जहा आमदनी नहीं है और खर्च बराबर है उसकी समाप्ति निश्चित है। जीव राशि को अनन्त कह देने मे भी छुट्टी नही मिलती। क्योकि एक तो सीमित क्षेत्र में अनन्त जीव रह नही सकते, दूसरे वे कितने भी हो पर काल राशि के अनन्तावे हिस्से है। स्वय जैन शास्त्रो की भी यह मान्यता है कि जीव राशि मे पुद्गल राशि अनन्त गुणी है और उससे अनन्तगुणी कालराशि है।

ऐसी हालत में जीवराशि कालराशि के सामने टिक नही सकती।

तीन लोक का क्षेत्र सीमित है। उसमें जितने प्रदेश होंगे उससे अधिक परमाणु नही होसकते। क्योकि एक परमाणु बराबर जगह को ही प्रदेश कहते है। ऐसी हालत में त्रिलोकी में जितने प्रदेश होगे उससे कुछ कम या अधिक से अधिक उतने परमाणु रह सकते है। इसलिये परमाणु भी असख्य अर्थात् सीमित होगे। अब यदि एक एक प्राणी को तैजस कार्मण शरीर के रूप में या औदारिक शरीर के रूप में एक एक करोड परमाणु भी दिये जायं तो ब्रह्माड में जीवो की सख्या असख्य परमाणुओ के करोडवाँ हिस्सा होगी। अनन्त का तो सवाल ही क्या है। ऐसी हालत में ब्रह्माड में अनन्त जीव राशि कहा से रह सकती है। जो मुक्ति के नाम पर घटती तो जाय पर समाप्त न हो। इस दृष्टि से मोक्ष नही बनता।

फिर यह भी सोचे कि मोक्ष का रूप क्या है? वहा आनन्द क्या है। मानलिया जाय कि मुक्तात्मा में चेतना है। उसके द्वारा सम्भवत वह अपने अस्तित्व का भान कर रही होगी। बाकी और कोई जानकारी या सुखानुभव वहा सम्भव नही है। जैन शब्दो में वहा का सुख निराकुलता रूप है।

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहि न ताते शिवमग लाग्यो चाहिये।

पर निराकुलता से निषेधात्मकता का पता लगा। आकुलता का अभाव तो जड पदार्थों में भी होता है। सचमुच विधेयात्मक सुख का मोक्ष में पता ही नहीं लगता। वहा एक तरह की जडता ही मालूम होती है। इस प्रकार शरीर मुक्त आत्मा का यही हाल होगा। ऐसी शरीर मुक्ति दूसरे दर्शनो ने भी मानी है। परन्तु उन्हे यह कहना पडा कि मोक्ष में बुद्धि सुख दु ख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म और सस्कार का नाश होजाता है। अर्थात् मोक्ष में बुद्धि या ज्ञान के साथ सुख का भी नाश होजाता है। यह एक तरह की जडता नही है तो क्या है।

इस प्रकार मोक्ष की मान्यता न गणित के सामने टिकती है, न अन्य तर्कों के सामने टिकती है, न ब्रह्माड रचना मे फिट बैठती है, न वह स्पृहणीय मालूम होती है। जिस मोक्ष के लिये यह सब घटाटोप है, जैन धर्म का सारा ढाचा है, उस मोक्ष की जब यह दशा है, स्वर्ग नरक और सर्वज्ञता का आधार जब समाप्त है तब यह समझना बहुत कठिन है कि किस आशा पर जैन लोग जैन धर्म से चिपटे हुए हैं। किस दमपर पुराने ढाचे के गीत गाये जारहे हैं। माना कि मोह की महिमा अपरम्पार है। फिर भी सारे आधार की असत्यता जब इतनी स्पष्ट है तब कोई इतना असत्यमोही कैसे होसकता है और कैसे वह मनुष्योचित बुद्धि विचार का आधार कहा जासकता है।

ऊपर जो बाते कही गई है वे अन्य धर्मो के समान जैनधर्म को भी पुरातत्व के अजायबघर में रखने के लिये काफी है। परन्तु और भी दर्जनो बाते ऐसी है जो किसी समझदार को जैनधर्मी न रहने देगी। अविवेक या मोह के कारण कितने स्वपर कल्याण का नाश किया जारहा है इससे बडा आश्चर्य होता है। कुछ बातो का उल्लेख यहा किया जारहा है।

निवृत्तिवाद

४– मोक्ष की शून्यता ने जैनों को निवृत्तिवादी बनादिया। हर तरह का विषयभोग अधर्म बनगया।

मुनि सकल व्रती बडभागी।
भव भोगन ते वैरागी ।।

यह जीवन का आदर्श बनगया। इसलिये ब्रह्मचर्य पालन, अन्य इन्द्रियों के विषयो का त्याग, यहां तक कि अनावश्यक कष्टो का सहना, सहज ही उनमे बचा जासकना हो तो न बचना, धर्म बन गया। ठड में नगे खडे है गर्मी में धूप का कष्ट उठा रहे है। भूख और प्यास का कष्ट उठारहे हैं। यह सब क्यो ? उस मोक्ष के लिये जो हर तरह खडित है, और बेकार भी है, बेस्वाद भी है। पर हजारो आदमी अनावश्यक कष्टो का बोझ लादे हुए हैं। और उन अनावश्यक कष्टो का हिसाब पेश कर समझा जारहा है कि इतना धर्म होरहा है। अज्ञान का कैसा भयकर ताडव है यह !

अनावश्यक कष्ट

पुराने लोग यह समझते थे कि भलाबुरा सब देवताओ की कृपा से कोप से होता है। इस भ्रम के कारण वे देवताओ के नामपर अनेक अनावश्यक तप करते थे। मानते थे कि इससे देवताओ का दिल पिघल जायगा तो उनकी नाराजी दूर होजायगी इससे कष्ट दूर होजायंगे या वे खुश होजायंगे तो भला करदेंगे। इसप्रकार पुराने लोगो ने तप के नाम पर अनावश्यक कष्ट लाद लिये थे। कोई पचाग्नि तपता है, कोई नदी में खडा है, कोई नदी में डूबकर आत्महत्या कर रहा है। कोई देवी को सिर या जीभ काटकर चढारहा है। कोई पत्तो पर गुजर कर रहा है, कोई सिर्फ पानी पीकर दिन काट रहा है। किसी ने दिन-रात खडे रहने का नियम लेलिया है। कोई घर से तीर्थस्थान तक दडवत करता हुआ कोसो की यात्रा कर रहा है। इस प्रकार देवता को खुश करने के नाम पर अनावश्यक कष्टो का ढेर मनुष्य ने सिर पर लाद लिया था और अभी भी लादे हुए हैं। जैन धर्म कुछ वैज्ञानिक था। वह इस तरह देवताओ को खुश करने की बात नही मानता था। कुछ कष्टो का उसने निषेध भी किया। परन्तु अन्य नाना तरह के कष्ट उसने भी लाद लिये। और दूसरो ने अधिक लाद लिये। पृष्ठ भूमि में इतना

परिवर्तन जरूर कर लिया कि इससे देवता खुश नही होते, पाप कटते है। पर अनावश्यक कष्टो का पहाड लदा ही रहा, बल्कि टोटल मिला-कर उसकी मात्रा बढ ही गई। किसी के अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिये उसकी क्षति पूर्ति करना, और उस क्षतिपूर्ति में कुछ कष्ट हो तो सहन करना ठीक बात है। परन्तु बेकार ही किसी तरह का कष्ट उठा लेना और समझना कि पाप कट गया गजब की मूर्खता है। मेरे पेट में विकार है इसलिये मै अनशन कर लू यह विवेक पूर्वक उठाया गया भूख का कष्ट उचित है परन्तु पेट का विकार दूर करने के लिये नगा होकर ठड का कष्ट सहन करु, या धूप तपू तो यह बेवकूफी है। कष्ट सहन का ठीक काय कारण भाव होना चाहिये। पर इस कार्यकारण विवेक का कोई पता नही है।

कोई स्वास्थ्य की दृष्टि से एकाध दो दिन जल के आधार से उपवास करे तो ठीक है, परन्तु निर्जल उपवास करने, या सप्ताहो महीनो के उपवास करने का क्या अर्थ है ? साधु खातापीता है, पीछी ओघा कमण्डलु आदि रखता है, दवा वगैरह भी लेता है यह सब गृहस्थ से कराता है अब यदि चार छह माह में उसने नाई से मुंडन करालिया। तो क्या बिगड गया। हाथो से बाल खीचकर उखाड़ने का नरक किस-लिये ? इससे उसका या दुनिया का क्या भला है ! जब केशलोंच देखने के लिये भीड इकट्ठी होजाती है तब ऐसा मालूम होता है कि जैनो की परिभाषा के असुर इकट्ठे हुए है। असुरो को दूसरो को दुःखी देखकर बडी प्रसन्नता होती है। केशलोंच आदि का कष्ट देखकर खुश होने वाले या श्रद्धा प्रगट करने वाले भी ऐसे ही है।

साधु में उदारता हो, ईमानदारी हो, असाधारण सेवाभाव हो, परहित तत्परता हो तो ठीक है। पर सेवा आदि की पर्वाह न करते हुए केश लोंच, नगेपन के कष्ट, ठड गर्मी के कष्ट, अनावश्यक उपवास आदि के कष्ट, उसपर क्यो लादे जाना चाहिये ! साधु को अपने यहा बुलाने के लिये गृहस्थ हजारो मील की यात्रा करेगा, उसके पैदल बिहार के लिये गाड़ी, ठेला, नौकर चाकर, रास्ते में भोजन कराने के लिये

साथ चलने वाले कुटुम्बो का मेला लगवायगा परन्तु इतने मत्र कष्ट के वदले ट्रेन या मोटर में साधु को यात्रा न करायगा। साधु को पैदल चलने का कष्ट उठाना ही चाहिये भले ही उसकेलिये गृहस्थो को भी कई गुणा कष्ट उठाना पडे, समय श्रम और धन खर्च करना पड़े क्योकि कष्ट धर्म है। धर्म की यह कितनी वेकार कसौटी है!

मुनि किसी शिला पर बैठते थे। किसी दुश्मन ने वह शिला गरम कर दी। साधु को पता लगगया। वह चाहे तो शिला पर न बैठकर जीवन बचा सकता है और साधना कर सकता है। पर नही, वह जाकर उसी शिला पर बैठेगा और मर जायगा। और जैन कहेगे उसे मोक्ष होगया। इस प्रकार की दर्जनों कहानियाँ जैन शास्त्रो मे भरी पडी हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानो कितने भी बेकार हो पर ज्यादा से ज्यादा कष्ट उठाओ और जल्दी से जल्दी मरो, यही जैन धर्म है, यही मोक्षका शार्ट कट है।

तात्पर्य यह है कि पुराने जंगली युग में देवताओ को खुश करने के नाम पर कष्ट उठाने और जीवन वर्वाद करने का जो कार्यक्रम था उससे जैन धर्म पिंड न छुडा सका। देवता की जगह पर कर्म को बिठला-कर उनसे कई गुणे कष्ट लाद लिये गये।

व्रतों का रूप

मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धो को सुधारने के लिये हर एक धर्म में कुछ व्रत नियम होते हैं। यही उस धर्म का मुख्य रूप होता है। जैन धर्म ने भी पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति, तथा गृहस्थो के लिये पाच अणुव्रत और सात शील (गुणव्रत शिक्षाव्रत) वताये। अधिकाश व्रत अच्छे है। परन्तु उनमें ससार से भागने की वृत्ति, उग्र निवृत्तिवाद, अनावश्यक कष्टो की मुख्यता आदि दिखाई देती है। अहिंसा व्रत अच्छा है परन्तु जैनो के अनुसार आदर्श अहिसक वह है जो खेती नही करता, रोटी नही पकाता, घर गृहस्थी के और भी जरूरी काम नही करता। इसलिये साधु तो ये कार्य करता ही नही, गृहस्थ

करता है पर इन्हे पाप समझता है। अहिंसा के इस स्वरूप में बड़ी अव्यावहारिकता है। कार्य-विभाजन की दृष्टि से साधु पर खेती आदि के कार्य की जिम्मेदारी न डाली जाय यह किसी तरह ठीक बात है। पर यह करेगा तो पाप होजायगा यह बड़ी गलत बात है। अन्न खाने में पाप नहीं है तो खेती और रोटी पकाने में पाप क्यों मानना चाहिये। इसप्रकार अहिंसा के इस रूप में दम्भ और मुफ्तखोरी आजाती है। जीवन को टिकाये रखने के लिये जो जो कार्य आवश्यक हैं वे सब साधु के लिये भी कर्तव्य हैं और गृहस्थ के लिये भी कर्तव्य हैं। किसी में अकर्मण्यता पैदा करना या आवश्यक जिम्मेदारी से भागना अहिंसा नहीं है। इसलिये अरहंत को भी खेती करने या रोटी पकाने आदि से परहेज न होना चाहिये। यह दूसरी बात है कि ऐसा साधारण काम उससे लिया न जाय। इसप्रकार जैन धर्म ने अहिंसा का जो चित्रण किया है उसमें काफी परिवर्तन की आवश्यकता है।

सत्यव्रत बहुत अच्छा है। परन्तु इसमें भी सुधार की जरूरत है। निवृत्ति का अतिरेक होने से सत्य बोलने की अपेक्षा मौन लेने का अधिक महत्व बताना ठीक नहीं है। यह ठीक है कि कहीं सत्य बोलना अच्छा होता है कहीं मौन रखना अच्छा होता है। पर यह उपयोगिता का सवाल है। सत्य बोलना प्रवृत्ति रूप होने से हीन है, मौन निवृत्तिरूप होने से महान है यह विचार गलत है। साधारणतः मौन की अपेक्षा सत्य बोलना ही श्रेष्ठ है। समिति (पुण्यप्रवृत्ति) की अपेक्षा गुप्ति (अप्रवृत्ति या निवृत्ति) को जो महत्त्व दिया गया वह अनुचित है।

ब्रह्मचर्य को भी व्रत में रखना अतिनिवृत्तिवाद की निशानी है। मैथुन कोई पाप नहीं है। बल्कि दूसरे भोगों की अपेक्षा कम खर्च का और दूसरे भोगों की अपेक्षा अधिक आनन्द देने वाला है। इसलिये इसके त्याग को व्रत बनाने की कोई जरूरत नहीं है। हां! विद्या-साधना या अन्य किसी साधना के समय ब्रह्मचर्य जरूरी है इसलिये उस अवसर पर तप के रूप में उसका उपयोग है। मैथुन व्यभिचार न बन-

जाय इसलिये शील व्रत है। अतिमात्रा में न होने लगे इसलिये निरतिभोग व्रत है। वास्तव में ब्रह्मचर्य कोई व्रत नही है।

परन्तु अतिनिवृत्तिवादी साधु संस्था होने के कारण मोक्ष के नाम पर हजारो घर उजाड़े गये, हजारो जीवन मुरझाये गये। जैसे बलिदान के पहिले यज्ञपशु की खूब पूजा की जाती थी उसीप्रकार अति निवृत्तिवादी साधुता की वेदी पर यज्ञपशु की तरह कुर्बान करने के लिये बेचारे मुनियों को पूजा गया और ब्रह्मचर्य के द्वारा सुखाया गया। जिस मोक्ष के नाम पर यह सब किया जाता था उसकी निराधारता और निरर्थकता का पता लगने पर तो बेचारे मुनियों पर बड़ी दया आती है।

पांचवा व्रत अपरिग्रह का था। इस व्रत के नाम पर साधुओ को नंगा तक रक्खा गया। जीवनोपयोगी साधारण से साधारण चीजो के लिये पराश्रित रक्खा गया। इससे उनकी परेशानी बढ़ी और गृहस्थों की भी परेशानी बढ़ी। कपड़े पहिन नही सकते इसलिये साथ में तम्बू चलना चाहिये, पयाल की गाड़ी चलना चाहिये। जब तक खूब धूप न निकल आये तब तक बन्द कमरे में पड़े रहना चाहिये। उनकी जरा जरा सी जरूरतो को पूरा करने के लिये गृहस्थों को चिन्ता रखना चाहिये। एक सेवाभावी ईमानदार मनुष्य के लिये जब भोजन वस्त्र घर तथा सेवा के विभिन्न साधनो की जरूरत पड़ती है तब ऐसे अपरिग्रह व्रत का क्या मतलब ? बहुत से बहुत इतना ही कह सकते हैं कि साधु के पास जो कुछ हो वह सब समाज का है। साधु ईमानदारी से उसका उपयोग करे उसकी व्यवस्था करे पर अपने को मालिक न बनायें, आदि। अपरिग्रह का यही रूप उचित था। किन्तु अपरिग्रह के नाम पर साधु जीवन को दम्भ और आडम्बरो मे फसाना, उसे कर्तव्य कार्य के लिये पराश्रित और लगड़ा बनाना, व्रती जीवन की विडम्बना है।

जैन व्रतो में कुछ और भी व्रत आते है। जैसे मैं जीवन भर इस क्षेत्र के बाहर न जाऊगा, उस क्षेत्र के बाहर कोई चीज भेजूंगा नही मँगाऊगा नही आदि। घोर निवृत्तिवाद के परिणाम स्वरूप ही

ऐसे वृथाव्रत थे । पाप करने को तो मनुष्य छोटे से क्षेत्र मे भी घोर से घोर पाप कर सकता था परन्तु निवृत्ति और सकुचितता जब धर्म की कसौटी बनजायँ तब ऐसे बेकार के व्रत भी अस्तित्व में आजाते हैं ।

इसप्रकार जैन व्रत सुखीसमृद्ध सहयोगी मानव समाज के अनुरूप नही हैं । उनके कायाकल्प होने की जरूरत है । ग्यारह प्रतिमाएँ और चौदह गुणस्थान भी निवृत्ति के आधार पर बने हुए हैं । इनसे भगोडेपन के सस्कार ही पनपते हैं, सुखी ससार बनाने मे मदद नही मिलती ।

अनीश्वर वाद

जैन अनीश्वरवादी है । यह बात जैनो के वैज्ञानिकता की ओर झुकाव का सूचक है । पर धर्म के साथ किसी न किसी रूप में ईश्वरवाद आही जाता है । सो जैनो में भी आया । ईश्वर के सिंहासन पर तीर्थंकर बैठ गये । अनीश्वरवाद मे कोई किसी का मालिक नही होता न भक्ति का महत्व होता है, परन्तु तीर्थंकर को ईश्वर मानकर ईश्वरवाद के सब चिन्ह वहा आगये । तीर्थंकर त्रिलोकीनाथ बनगये । तीन लोक रक्षक बनगये । उनकी भक्ति से स्वर्ग और मोक्ष तक मिलने लगे । "यद्भक्ति शुल्कतामेति मुक्तिकन्या परिग्रहे" "यदीयपादाम्बुज भक्तिशीकर सुरासुराधीश पदाय जायते" कहा जाने लगा । यह अनीश्वरवाद ईश्वरवाद से भी भद्दा रहा । और उसका यह भद्दापन श्रमणयुग के महत्वपूर्ण दिनो में उनके प्रभाव के कारण ईश्वरवादियो में भी घुस गया । श्रमणो ने, महावीर बुद्ध ने, ईश्वर का स्थान हथयाया तो ईश्वरवादियो में भी राम कृष्ण आदि को ईश्वर बना डाला गया । मनुष्य को ईश्वर का स्थान देदेना ईश्वर की विडम्बना है । चाहे वे महावीर बुद्ध हो चाहे राम कृष्ण, उन्हें ईश्वर के स्थान पर बिठला देने से ईश्वर की भयकर विडम्डना होती है । ब्रह्मा विष्णु महेश का ईश्वरपन समझ में आसकता है पर राम कृष्ण का ईश्वरपन समझ के परे है और ईश्वर की विडम्बना है । एक बार सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र को व्यक्तित्व (परसोनीफिकेशन) देकर ईश्वर की जगह भर दीजाय तो

समझ में आता है। पर इन गुणों के आधार से बने हुए आदमी को ईश्वर बनादेना अनीश्वरवाद की हत्या और ईश्वरवाद की विडम्बना है। ईश्वर तो वही कहा जासकता है जो समस्त प्राणिजगत् का अधिपति हो, व्यवस्थापक हो, न्यायाधीश हो, तथा रागों और त्रुटियों से मुक्त हो। ऐसा ईश्वर कल्पना में तो आसकता है पर कोई मनुष्य ऐसा बन नहीं सकता। मनुष्य तो सिर्फ उसका पैगम्बर बन सकता है। जैनधर्म अनीश्वरवादी होकर भी अपने अनीश्वरवाद को खत्म कर चुका और ईश्वरवाद को शास्त्रीय रूप नहीं देपाया। इसलिये उसे गुणमय ईश्वर-वाद का सहारा लेना चाहिये। मनुष्य को देवता या ईश्वर न बनाकर गुणों को व्यक्तित्व देकर उन्हें ईश्वर के सिंहासन पर बिठलादेना चाहिये। इस तरफ कुछ थोड़ा सा झुकाव जरूर हुआ पर वह शास्त्रीय रूप ले नहीं पाया। पं तोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाश में जो मंगलाचरण किया उसमें गुणों को ही ईश्वरत्व देने की तरफ संकेत है।

मंगलमय मंगलकरन वीतराग विज्ञान।
नमो ताहि जाते भये अरहन्तादि महान॥

इस दोहे में उनने अरहन्त को नमस्कार नहीं किया किन्तु अरहन्तादि को बनानेवाले वीतरागता तथा विज्ञान गुणों को नमस्कार किया। इन्हीं गुणों को यदि व्यक्तित्व देदिया जाय तो यही ईश्वर का दाम्पत्य बन-सकता है। विज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, और वीतरागता अर्थात् सम्यक् चारित्र। इसप्रकार सम्यक्त्व और चारित्र यही ईश्वर-युगल बनसकता है।

मैंने सत्यसमाज में सम्यक्त्व को सत्येश्वर कहकर और सम्यक् चारित्र को सम्मेशी (विश्वप्रेम की ईश्वरी) या भगवती अहिंसा कहकर ईश्वर के दाम्पत्य की स्थापना की है और सब तीर्थंकरों पैगम्बरों अव-तारों को उनके पुत्र के समान माना है। इस तरह ईश्वरवाद की प्यास बुझाई है और उसकी विडम्बना से भी बचाव हुआ है। अन्यथा भारत में ईश्वरवाद की विडम्बना प्राय सभी धर्मों ने की है। जैनधर्म बौद्ध-धर्म ने तो महावीर बुद्ध को ईश्वर बनाकर विडम्बना की और हिन्दू

धर्म ने राम कृष्ण को ईश्वर बनाकर विडम्बना की। ब्रह्मा विष्णु महेश के रूप में ईश्वर मानना कुछ ठीक था परन्तु उनके आपसी संघर्ष की कहानियाँ जो गढ़ीगई उससे यहा भी विडम्बना होगई। फिर ईश्वर को तीन पुरुषो के रूप में चित्रित करना भी अच्छा नही हुआ। दम्पति को तो हम एक ही व्यक्तित्व कह सकते हैं। क्योकि दोनो पूर्ण जीवन के परस्पर पूरक दो अग हैं। परन्तु तीन पुरुष और तीनो का अलग अलग दाम्पत्य बनाने से ईश्वर ईश्वर नही रहजाता किन्तु एक समिति बनजाता है और इस समिति में अध्यक्ष कौन है इसका झगडा खडा होजाता है। ईश्वर एक ही होना चाहिये। हा! वह जगत की मा भी है और जगत् का पिता भी, इसलिये उसे दम्पति रूप मे चित्रित किया जासकता है। जैनधर्म यदि रत्नत्रय को दम्पति रूप (सम्यक्त्व और चारित्र) रूप मे चित्रित कर यदि ईश्वरवाद को अपनाता तो ईश्वरवाद की प्यास भी बुझती और ईश्वरवाद की विडम्बना भी न होती।

तीर्थंकर को ईश्वर बनाकर, उसके जन्म से मरण तक उसके आगे इन्द्रादि देवताओ को नचाकर, उसके चमत्कारो की झूठी और अविश्वसनीय कहानियाँ गडकर, उसकी शक्ति से स्वर्ग मोक्ष आदि मिलने के गीत गाकर,

प्रभु तुम सुमरन में ही तारे।
शूकर सिंह नकुल वानर ने कहाँ कौन व्रत धारे॥

आदि गीत रचकर ईश्वरवाद की विडम्बना और अनीश्वरवाद की हत्या कीगई है। इसकी अपेक्षा तीर्थंकरो को महामानव या पैगम्बर मानकर सम्यक्त्व चारित्र को व्यक्तित्व देकर ईश्वर बताया होता तो ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद दोनो वादो का लाभ लिया जासकता था।

यद्यपि मूल जैन धर्म मे गुणो को व्यक्तित्व देने की प्रथा नही थी परन्तु धीरे धीरे वह प्रवेश करने लगी थी जरूर।

'जिनशासनी हंसासनी पद्मासनी माता।

"वाणी कर्मकृपाणी द्रोणी मसार जलधि संतरणे ।
वेणी जिन घनमाला जिनपादाम्भोज मश्रिता जीयात् ॥

आदि पद्यों मे वेणी धारिणी वाणीदेवी का चित्रण किया जाने लगा था। इमप्रकार गुणो को व्यक्तित्व देकर देवत्व का रूप दिया गया है। जरूरत इस बात की थी कि प. तोडरमल्ल जी के दोहे के अनुमार सम्यक्त्व चारित्र को तीर्थंकरो आदि के भी जनक जननी के समान मानकर ईश्वर के सिहासन पर उन्हे बिठलादिया गया होता। तीर्थंकर आदि उनके भक्त सेवक पैगम्बर के रूप मे हमारे सामने आते। आज तो जैनो का अनीश्वर वाद समाप्त है। ईश्वरवाद का शास्त्रीय रूप बन नही पाया है। जो अशास्त्रीय ईश्वरवाद छागया है वह विकृत और विडम्बनापूर्ण है।

कर्मवाद

जैनो मे ईश्वरवाद तो नही था पर आत्मा परलोक पुण्यपाप का फल आदि मभी बाते थी। इमके बिना किमी धर्म का वास्तविक उपयोग ही नही रहता। परन्तु ईश्वर के बिना पुण्यपाप के फल की व्यवस्था कैसे बने इसकेलिये कर्मवाद आया। इसका मार यह है कि प्राणी हर ममय कुछ न कुछ पुण्य पाप करता रहता है। और उसके अनुसार उसकी आत्मा के माथ कुछ परमाणु चिपकते है। वे ही परमाणु कर्म कहे जाते है। और उन्ही के कारण प्राकृतिक प्रणाली से कर्म का फल मिलता है। कर्म करने मे आत्मा के साथ चिपके हुए परमाणुओं के द्वारा फल मिलने को कर्मवाद कहते है। कर्मवाद के विषय में जैनो का चिन्तन अभूतपूर्व है, खूब विस्तृत और गहरा है। ईश्वर के न रहने पर भी कर्मफल की व्यवस्था का बडा व्यवस्थित विवेचन इसमें है। हाला कि भेद प्रभेदो के विवेचन में कुछ आपत्तियाँ जरूर है परन्तु ऐसी हलकी पतली गलतियो या आपत्तियो पर मैं यहा उपेक्षा कर रहा हू। क्योकि कर्मफल के विश्वास पर उससे विशेष चोट नही पडती। परन्तु कुछ बाते ऐसी है जिनसे कर्मवाद कर्तव्यो में बाधक होजाता है।

१- कर्मवाद ने जीवन को इतना नियन्त्रित कर दिया है कि जीवन की हर घटना कर्मोदय से प्रेरित होगई है। मुझे अच्छा बुरा

जन्म मिला, अच्छा बुरा शरीर मिला, अच्छी बुरी परिस्थिति मिली, आदि के रूप में कर्मफल व्यवस्था ठीक है। परन्तु मेरी चोरी होगई, मेरे ऊपर किसी ने अत्याचार किया यह भी सब मेरे पहिले पाप का उदय है, इसप्रकार हर घटना को पुराने कर्म का उदय मानने में एक बडी बाधा तो यह है कि उस घटना में निमित्त बनने वाला अपनी जिम्मेदारी का अनुभव नही करता। मेरे कर्म के उदय से मेरी चोरी हुई और चोर इसमें निमित्त बन गया इसमें चोर का क्या कुसूर! मेरे कर्मोदय को सफल बनाने के लिये किसी न किसी को चोर बनना ही पड़ता। कर्मसिद्धान्त का यह बड़ा घातक प्रभाव है।

२– दूसरी बात यह है कि वह व्यक्ति भी जिम्मेदारी का अनुभव नही कर पाता। कोई अन्धविश्वासी है मिथ्यात्वी है तो मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से, किसी को गुस्सा आगया है तो क्रोध के उदय से, कोई किसी को धोखा देरहा है तो माया कर्म के उदय से, कोई किसी का अपमान कर रहा है तो मान कर्म के उदय से, इस प्रकार मनुष्य अपनी बुराइयों का बचाव कर वृथा सन्तोष कर लेता है। इस बात का भी जीवन पर घातक प्रभाव पडता है।

३– इससे कृतघ्नता को भी उत्तेजन मिलता है। जैन शास्त्रों में श्रीपाल कथा में बताया गया है कि एक राजा की बड़ी पुत्री अपने पिता का उपकार मानती थी क्योंकि उसे अजैन गुरुओ से शिक्षा मिली थी। राजा ने प्रसन्न होकर उसका विवाह अच्छे राजकुमार मे कर दिया, पर अन्त में उसकी दुर्दशा हुई। कृतज्ञता का फल बुरा मिला। दूसरी लड़की कृतघ्न थी। वह कहती थी इसमें पिता का क्या उपकार, मुझे जो कुछ मिला है अपने भाग्य से मिला है। राजा ने नाराज होकर उसकी शादी एक कोडी मे करदी। फिर भी उसका फल अच्छा हुआ। उसके पति का कोड चला गया और वह रानी बनी। इस प्रकार यह कर्म सिद्धान्त कृतघ्नता को उत्तेजित करता है। यह भी जीवन पर घातक प्रभाव है।

४–चौथी बात यह है कि ससार को सुखी बनाने की या कष्टों से छुडाने की वृत्ति भी इससे नष्ट होती है। इसीलिये जैनो में एक सम्प्र-

दाय ही ऐसा खड़ा होगया है जो परोपकार को भी पाप कहता है। उसके मत से प्रत्येक प्राणी अपने कर्म का फल भोग रहा है उसे भोगना ही पड़ेगा, कर्मफल से बचाने का प्रयत्न क्यो करना चाहिये। यह तो कर्मफल व्यवस्था मे बाधा डालना है। इस सम्प्रदाय की लोग आलोचना करते है, परन्तु इसमें उस सम्प्रदाय का खास कुसूर नही है, यह तो जैनो के कर्म सिद्धान्त का सहज परिणाम है।

इसप्रकार कर्मवाद एक बहुत अच्छा सिद्धान्त होने पर भी उसका जो रूप जैनधर्म में चित्रित किया गया है उसका जीवन पर घातक प्रभाव काफी पड़ता है। इसलिये यह सिद्धान्त पूरी तरह उपादेय तथा सन्तोषप्रद नहीं है।

कषायभ्रम

भ्रमपूर्ण मोक्ष की साधना ने जीवन को जडता की ओर बहा-दिया। क्रोध मान माया लोभ काम हास्य रति आदि वृत्तियो को नष्ट करना ध्येय बनगया। इन वृत्तियो को नष्ट नही किया जासकता, अगर नष्ट कर दिया जाय तो जीवन ही समाप्त होजाय। सारी बीमारियाँ वात पित्त कफ से पैदा होती है किन्तु यदि इनका नाश कर दिया जाय तो जीवन ही नष्ट होजाय, उसी प्रकार क्रोधमान आदि मनोवृत्तियो की बात है। इनका सर्वथा नाश जीवन का नाश है, गतिरोध है, जडता है। इस प्रयत्न में कभी किसी को सफलता नही मिली। हा, इसके नामपर अकर्मण्यता, लापर्वाही, परस्पर असहयोग दम्भ आदि जरूर बढे। असल में इन वृत्तियो पर नियन्त्रण रखने की ही जरूरत है।

कथासाहित्य

धर्मो का कथा साहित्य इतिहास की दृष्टि से नही लिखा जाता किन्तु मनुष्य को पथप्रदर्शन के लिये लिखा जाता है। ऊपर जैनधर्म की जिन त्रुटियो या खराबियो का उल्लेख किया गया है उसका असर जैन कथा साहित्य पर भी पडा। और वह उस दृष्टि से घातक बना। इसके सिवाय कुछ खराबियाँ ऐसी थी जो जैन सिद्धान्त की देन तो नही थी परन्तु जिस युग में जैनधर्म स्थापित किया गया गया था उस युग की

अविकसितता के कारण जैन कथा साहित्य पर उसका प्रभाव पडा था। दोनो ही दृष्टियो से यह कथा साहित्य मनुष्य को गुमराह करने वाला रहा। खास खास खराबियाँ ये हैं।-

१– आर्य लोग साम्राज्यवादी थे। वे राजसूय यज्ञ अश्वमेध यज्ञ द्वारा घोर हिंसा और युद्ध करके साम्राज्य की स्थापना करते थे। जैन धर्म पर भी इसका दुष्प्रभाव पडा। इनका कथा साहित्य भी साम्राज्य वाद से भर गया। तीन खड पर विजय प्राप्त करना प्रति नारायणो का, और उन्हे मारकर त्रिखडाधिपति बनना नारायणो का तथा छह खड पर विजय प्राप्त करना चक्रवर्तियो का विधान बन गया। ये युद्ध किसी खास घटना पर नही किन्तु प्रकृति के विधान पर निर्भर होगये। इसकेलिये अपने निरपराध भाई की भी हत्या करने के लिये तैयार होना चाहिये। साम्राज्यवाद का यह उग्र समर्थन जैन धर्म से मेल नहीं खाता फिर भी युग के प्रभाव के कारण वहा कथा साहित्य का अग बनगया है।

२– भूत पिशाच देव आदि को पात्र बनाकर झूठे चमत्कारो को लेकर कथा साहित्य भरा हुआ है। इसलिये दूसरे धर्मों के कथा साहित्य के समान जैनधर्म का कथा साहित्य भी अविश्वसनीय है। जो कथा अविश्वसनीय होजाय उससे कोई प्रेरणा पाठक या श्रोता को नहीं मिलती।

३– कथा साहित्य में नियतिवाद का जोर है। भविष्यवाणियो की सार्थकता का मनुष्यपर यह प्रभाव पडता है कि जो नियत है उसे कोई बदल नही सकता, पुरुषार्थ करना वृथा है। सीता के निमित्त से रावण का वध होगा यह भविष्य वाणी की गई थी। रावण ने बहुत कोशिश की पर उस निमित्त से मौत हुई ही। द्वीपायन के जरिये द्वारिका का नाश होगा इस भविष्यवाणी को विफल करने के लिये यादवो ने बहुत प्रयत्न किया पर वह भविष्यवाणी भी सफल होकर ही रही। सारा प्रयत्न बेकार हुआ। इसीप्रकार कृष्ण के द्वारा कस वध की भविष्य वाणी भी सफल रही। इसप्रकार की कथाएँ झूठी तो है ही, साथ ही

मनुष्य की प्रयत्नशीलता नष्ट करती है ।

४– नारियो को भ्रष्ट चित्रित करने के लिये बहुत ही भद्दा और अस्वाभाविक चित्रण किया गया है । एक प्रौढ महिला का अपने हाथ से पाले शिशु के १६ वर्ष का होने पर कामयाचना करना और उसके अस्वीकार करने पर उसे पति के द्वारा मरवा डालने का षड्यन्त्र करना (प्रद्युम्न चरित्र म कालसंवर की पत्नी की कथा) यशोधर चरित्र मे उसकी रानी को एक नीच लूले लँगडे के साथ अभिमान शून्य व्यभिचार का चित्रण करना आदि अस्वाभाविक तो है ही, साथ ही नारी निन्दा के सिवाय उसका दूसरा कोई ध्येय ही नही मालूम होता ।

५– कही कही तो साम्प्रदायिकता के आवेश में मूल धर्म को ही नष्ट कर दिया गया है । मधु राजा ने अपने माडलिक राजा की पत्नी का हरण कर लिया । परन्तु उसने जैन दीक्षा ली इसलिये वह उच्च श्रेणी का देव हुआ, और जिसकी पत्नी हरीगई वह जैनेतर साधु दीक्षा लेने के कारण दुर्गति मे गया । इस प्रकार अन्यायी की सद्गति और अन्यायपीडित की दुर्गति दिखाकर सदाचार रूप मूलधर्म की ही अवहेलना की गई ।

६– निरीश्वरवाद में भक्ति मत्र जप आदि से उद्धार की बात न होना चाहिये । कर्तव्य पर ही जोर होना चाहिये । परन्तु किसी ने मरते समय किसी को जैनमत्र सुनादिया कि वह देव होगया । जैनसाधुओं को भोजन दिया जारहा था कि कुछ जानवरो ने उसकी मन ही मन सराहना की कि उन्हे उच्च सद्गति मिलगई । ईश्वरवादी धर्मो की नाम जप मंत्र आदि के द्वारा मिलने वाली वञ्चना पूर्ण सस्ती सद्गति का असर जैनधर्म पर भी पडा ।

७– एक एक राजा के हजारो पत्नियों का उल्लेख करके नारियो की काफी दुर्दशा कराई है । यहा तक कि एक पत्नीव्रत के लिये प्रसिद्ध रामचन्द्र जी के आठ हजार पत्नियाँ मानी हैं । खेद और शर्म की बात तो यह है कि जब कोई राजा नई पत्नी लाना चाहता है तब

जैन लेखक नई पत्नी का पक्ष लेते और पुरानी पत्नीका मजाक उडाते है। श्रीकृष्ण जब रुक्मिणी को लेआये तब जैन कथाकार ने सत्यभामा का खूब मजाक उडाया और रुक्मिणी को खूब उठाया। नारी की विडम्बना में जैन कथाकार पीछे नही रहे, न न्याय का पक्ष लिया।

८— साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण दूसरे धर्म के देवो की बहुत विडम्बना की गई है। शिवजी की कहानी तो बहुत भद्दी है ही, साथ ही श्रीकृष्ण को भी नरक भेजा है। मानो कर्मयोग का कोई महत्व न हो।

९— कई कहानियाँ विश्वरचना मे फिट नही बैठती। भामण्डल को अमुक देव सूर्यचन्द्र के भी ऊपर लेगया। इतने दूर लेजाने पर कोई मनुष्य हवा के बिना कैसे जिन्दा रहेगा। और असीम ठड में उसका सारा शरीर बर्फ से भी कठोर होजायगा। वहा कोई जिन्दा नही रह सकता। इसका लेखक को पता ही नही था।

१०— दाम्पत्य की विडम्बना खूब पाई जाती है। एक साधु ने पति को प्रतिज्ञा देदी कि दिन में मैथुन न किया करो, पत्नी को प्रतिज्ञा देदी कि रात मे मैथुन न किया करो। दोनो पर धोखे से ब्रह्मचर्य लद-गया और धर्म होगया। पतिपत्नी रात में एक पलग पर सोते थे पर बीच मे नगी तलवार रख लेते थे। जिससे ब्रह्मचर्य लदा रहे।

पहिले जैनधर्म की भूले बतलाई गई है वे सब कथा साहित्य में भी प्रगट हुई है। यहा तो कुछ नमूने रूप में बाते बतलाई गई है।

नारी का अपमान

सामन्तवादी युग के कारण नारी की इज्जत कम थी। वह पुरुष के वैभव के समान थी। बहुतसी पत्नियो से पुरुष वैभवशाली माना जाता था। पुरुष मनचाहे विवाह कर ले और बुढापे तक करता जाय पर नारी बाल विधवा भी हो तो भी दूसरा विवाह न करसके। चित्रण तो यहा तक किया गया कि विवाह होने के पहिले ही यदि दूल्हा बारात मे से भाग जाय तो भी नारी पर वैधव्य लद जायगा। और

ऐसी नारी जीवन भर वैधव्य निभायगी तो प्रतिष्ठित होगी। नारी त्याग मे, बलिदान मे पुरुष से सदा आगे रही पर उसे मोक्ष नही मिला। अमुक शास्त्र पढने का अधिकार नही मिला। वह सौ वर्ष दीक्षिता हो, विदुषी हो, तपस्विनी हो फिर भी उसे कल का मामूली साधु नमस्कार न करेगा। बल्कि वही उस कल के साधु को नमस्कार करेगी। गार्हस्थ्य जीवन में तो उसकी दुर्दशा थी ही, पर सन्यास में भी उसे उचित प्रतिष्ठा न मिली बल्कि उसका अपमान किया गया। आज का युग नारी के साथ किये गये इस अन्याय का परिमार्जन कर रहा है। इस परिमार्जन में जैन मान्यताएँ कोई हाथ नही बटा सकती।

संसार का रूप

दुःख ससार का स्वभाव है और वह पतनशील है। अर्बो खर्वो वर्ष से पतित ही होता चला आता है और अभी करीब चालीस हजार वर्ष तक और गिरता जायगा यह भी जैन मान्यता है। यह ठीक है कि ससार में दुःख भी है पतन भी है। परन्तु यह बात भुलादी जाती है कि ससार में दुःख से अधिक सुख है। और पूर्ण दुःख रहित कोई जगत नही है। जिस मोक्ष की कल्पना की जाती है वह बिलकुल मिथ्या है इसलिये उसकी आशा करना ही वृथा है। पतनशीलता का भी भ्रम है। क्योंकि संसार वैभव आदि की सुख सामग्री में, ज्ञान विज्ञान में तथा सामाजिक सस्कृति सभ्यता में उन्नत ही होता जाता है। पहिले जमाने में अहकार आदि के वश में होकर आयेदिन युद्ध छेडदिये जाते थे, युद्ध मे रानियो और राजकुमारियो तक को लूट लिया जाता था, उन्हे बेंचकर गुलाम बना दिया जाता था। मनुष्य को बेचने खरीदने का रिवाज था, सैकडो हजारो स्त्रियाँ एक ही पुरुष मे बाध दी जाती थीं, आदि असीम जगलीपन था। आज हम उससे बहुत कुछ मुक्त होगये हैं। और इस दिशा में दिनप्रतिदिन प्रगति होरही है। अत्याचार तथा अन्य बुराइयाँ आज भी है पर पहिले की अपेक्षा आज वे अधिक शरमाती हैं, घट रही है। इससे मालूम होता है कि, मोक्ष के चक्कर में पडकर जैन धर्म ने ससार का रूप बहुत गलत पेश किया। इसमे जीवन पर

वहुत घातक प्रभाव भी पडता है । दुःख तो ससार का स्वभाव है तब उसका इलाज क्या होगा ! ससार तो पतनशील है मै पतित हुआ तो इसमे क्या आश्चर्य है ! इसप्रकार वहुत बुरी प्रेरणा ससार के स्वरूप से मिलती है ।

ससार में सभी जीव स्वार्थी है कोई किसी का नही इत्यादि विचारो ने भी मनुष्य को गुमराह किया है और ऐसा अर्धसत्य दिया है जो झूठ से भी बुरा है । स्वार्थी तो सभी है परन्तु अपने स्वार्थ के लिये दूसरो के स्वार्थों का समन्वय करना जरूरी है, परस्पर प्रेम विश्वास और सहयोग से ही अपने अपने स्वार्थ की सिद्धि होगी यह उचित और व्यावहारिक नीति उपेक्षणीय कर दी गई है । सव स्वार्थी है इसलिये सव को छोडदो, उनके साथ विश्वासघात करो, उन्हें अपने जीते जी विधवा और अनाथ बनाओ, समाज के प्रति अपनी कोई जिम्मेदारी न निभाओ, हा ! मुफ्त में उससे खाना आदि वसूल करते रहो, यही परमार्थ है, इसप्रकार दम्भपूण निकम्मा जीवन आदर्श मान लिया गया । और अविश्वास असहयोग अनुत्तरदायी जीवन बनाया गया । इसप्रकार ससार के स्वरूप वर्णन ने भी मनुष्य को बहुत गुमराह किया ।

बाप यह विचार करता रहे कि बेटा स्वार्थी है, बेटा सोचे बाप स्वार्थी है, पति सोचे पत्नी स्वार्थी है, पत्नी सोचे पति स्वार्थी है तव ससार की या समाज की क्या हालत होगी ! एक दूसरे के लिये जो त्याग बलिदान करते आये है, एक तरह की अभिन्नता का अनुभव करते है वह सव नष्ट होजायगा । और स्वर्ग की सामग्री रखते हुए भी ससार नरक वन जायगा । प्रेम आदि स्वर्गीय मनोवृत्तियाँ समाप्त होजायगी ।

वैराग्य आदि के नामपर भी हम ससार से भाग नही सकते । जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये इसी ससार पर लदे रहेगे । एक आदमी जीवन की सारी आवश्यकताएँ पूरी कर नही सकता । परस्परावलम्वन और परस्पर प्रेम से ही उसकी आवश्यकताएं पूरी होती है और मन को तसल्ली मिलती है, अमुक अंशो में अनाथता दूर होती

परन्तु पुरानी परम्परा की जो असत्यताएँ यहा मैंने बताई है इनपर विचार करेंगे तो आप को यह बात ध्यान में आजायगी कि असत्य के लिये जो आप दान कर चुके काम कर चुके वह तो व्यर्थ गया ही। भले ही आप उससे चिपटें रहे चाहे छोड दें। अब तो इतना ही हो सकता है कि आगे वह व्यर्थता चालू न रहे। भविष्य में जितनी बचाई जासके बचाली जाय। बल्कि ऐसा कुछ किया जाय कि पहिले किये गये अपव्यय की कुछ क्षतिपूर्ति होजाय।

रही प्रतिष्ठा की बात। सो सच्ची और भीतरी प्रतिष्ठा तो सत्य को अपनाने में ही है। महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे। और वे वैदिक क्षेत्र में बडे प्रतिष्ठित आचार्य थे। सब के सैंकडो शिष्य और हजारो अनुयायी थे। परन्तु ज्यो ही उन्हे युगसत्य के दर्शन हुए उनने प्रतिष्ठा वगैरह की पर्वाह न कर महावीर स्वामी का मार्ग प्रौढावस्था में अपना लिया। उससमय ऐसा मालूम हुआ कि उनने पुरानी प्रतिष्ठा सब खोदी। परन्तु महाकाल के दर्बार में जो प्रतिष्ठा उन्हे मिली उससे मालूम होता है कि उनने जितनी प्रतिष्ठा खोई थी उससे कई गुणी मिली। ध्यान रखिये कि मरते समय भी यदि मनुष्य सत्य को अपनाता है तो भी घाटे मे नही रहता।

हर एक धर्मसस्था की उम्र होती है। मनुष्य की उम्र सौ पचास वर्ष की होती है। धर्मसस्था की उम्र दो चारसौ वर्ष की होती है। उम्र पूरी होने पर मनुष्य का मरना जैसे उसका अपराध नही है उसी प्रकार धर्मसस्था की उम्र पूरी होने पर उसका मरना भी अपराध नही है। हमें उसका सन्मान करते हुए, उसके प्रति कृतज्ञ रहते हुए, सन्मान के साथ उसकी अत्येष्टि करना चाहिये। इसीमें दोनो का कल्याण है।

मैंने यही किया है। धर्मसस्था जब उपयोगी नही रहती तब वह मृत बनजाती है। दूसरी धर्मसस्था या धर्मतीर्थ के समान जैन तीर्थ भी जब मृत हुआ तब उसके प्रति कृतज्ञ रहते हुए, उसका सन्मान करते हुए उसकी अत्येष्टि मुझे करना पडी। इन बातो का सक्षिप्त

विवेचन मैंने इस लेख मे या लम्बे पत्र में किया है। अब आप जिसमें अपना और जगत् का कल्याण समझें वह करें।

आप सब का हितैषी और जन्म का रिश्तेदार— **सत्यभक्त**

६ सत्येशा ११९६५ ६-१-६५ सत्याश्रम वर्धा

सत्यसमाज और जैनसमाज

यह पुस्तिका पढने के बाद जिन लोगो का विवेक जगजाय, जो किसी न किसी अश म मोह पर विजय प्राप्त करले, उनको सोचना है कि वे क्या करे? महावीर स्वामी के प्रति कृतज्ञ रहते हुए भी यदि जैन धर्म युगबाह्य या मृत मालूम हो फिर भी उससे चिपटे रहना मनुष्यता को लजाना है। वे बहुत से बहुत इतना ही कह सकते हैं कि क्या करें, परिस्थिति अनुकूल नही है या बुढापे में अब क्या किया जाय? अथवा जैनधर्म छोडकर किस धर्म में जायँ, जीवनभर का सम्बन्ध कैसे तोडदें? नये स्थान में जाकर हम क्या कर सकेंगे? उन्ही को सलाह देने के लिये यहा कुछ सूचनाएँ देरहा हू।

१— जैनधर्म की युगबाह्यता समझ में आजाने पर भी पितामह की तरह महावीर स्वामी के विषय में पूज्यभाव और तदनुसार शिष्टाचार तो हर एक को रखना ही चाहिये।

२— सत्यसमाज का अनुमोदक सदस्य जरूर बनजाना चाहिये। तब जैन शास्त्रों का अध्ययन विश्लेषण की दृष्टि से किया जाय, श्रद्धापूर्वक नही। जो अनुचित बाते हैं उन्हे अनुचित कहने में सकोच न रहे। कहने का अवसर न हो तो चुप रहे पर उनका समर्थन कदापि न करे।

३— यदि उसके वश में हो तो जैन मन्दिर को सत्यसमाजी जैन मन्दिर बनाने की कोशिश करे। अर्थात् मूल नायक के रूप में तो महावीर स्वामी की मूर्ति रहने दे। किन्तु उसके ऊपर भगवान सत्य भगवती अहिंसा की छोटी छोटी मूर्तियाँ, और अगलबगल में अन्य धर्मो के महा-

मान्वो की मूर्तियाँ विराजमान करदें। और वे पूजापाठ वन्द करदें जिनमें अन्धश्रद्धापूर्ण अवैज्ञानिक असत्य वातें हैं। सत्यसमाजी दृष्टिकोण से प्रार्थनाएँ ही होने दें।

४– जो लोग सम्पन्न हैं वे सत्यसमाज के सत्यमन्दिर का निर्माण करायें।

५– सामाजिकता की दृष्टि से जैनसमाज से जितना सम्वन्ध रखना जरूरी है उतना सम्वन्ध रखते हुए धार्मिकता की दृष्टि से अधिक से अधिक मात्रा में सत्यसमाजी वनें।

६– सत्यसमाज कोई जन्मजाति नही है। हर धर्म और हर जाति के व्यक्ति इसमें आसकते हैं इसलिये अपने चारो तरफ जो भी व्यक्ति सम्पर्क में आते हो उनके सत्यसमाजी वनाने की कोशिश की जाय। उन्हे सत्यसमाज के संगठन म लाया जाय जिससे सामाजिकता का क्षेत्र विशाल होता रहे।

७– जो जैन विद्वान जीविका से स्वतन्त्र हैं, या जिनकी नौकरी जैनसमाज के अकुश के वाहर हैं, अथवा जिनके पास इतना पैसा होगया है कि नौकरी छोड देने पर भी गुजर कर सकते हैं उन्हे नि सकोच सत्यसमाजी वनजाना चाहिये तथा और भी वहुतसे लोगो को सत्यसमाजी वनाकर नया सगठन खडा कर लेना चाहिये। अपने पाडित्य का उपयोग इस नये सगठन के लिये करना चाहिये।

८– जो वहुत वडे श्रीमान हैं, जिनने जैन सस्थाओ को वडा वडा दान किया है या जैन सस्थाएँ अपने दान से खडी की है इसलिये उन संस्थाओ के अधिकारी हैं वे उन सस्थाओ को एक ट्रस्टी की हैसियत से चलाते रहे, फिर भी उसके मूल रूप को धक्का न लगाते हुए उसका जितना सत्यसमाजीकरण किया जासके किया जाय। न किया जासके तो न किया जाय। परन्तु सत्यमन्दिर, सत्य साहित्य, सत्यप्रचार आदि के लिये जितना नया कार्य किया जासकता हो जरूर किया जाय।

९– जिसके हाथ में यह पुस्तिका 'जैनों से' पहुँचे वह अधिक

मे अधिक लोगो को पढाये, अधिक से अधिक लोगो के साथ विचार विनिमय करे। इसका पुनर्मुद्रण कर अधिक से अधिक जैनो के हाथ में पहुँचाये। इन सब बातो का विचार करने के लिये जैन विद्वानों जैन धीमानो तथा अन्य श्रेणी के जैनों को बुलाकर एक सेमिनार की योजना करे। इस युग में सत्य की प्रतिष्ठा के लिये, स्वपर कल्याण के लिये क्या करना चाहिये इस विषय में खुलकर चर्चा हो। उस चर्चा के अन्त मे जिन जिन को यह मालूम हो कि इस पुस्तिका में कही गई बाते स्वपर-कल्याण के लिये जरूरी है उन लोगों का सत्यसमाज की दृष्टि से सगठन किया जाय।

१०– सत्यसमाज के संगठन में हर जाति हर वर्ग के लोग आसकने है और उन को लाकर सगठन को विशाल बनाना भी है। पर खान-पान - रहन-सहन के बारे में जैनो की एक संस्कृति है और वह अच्छी है। सत्यसमाजी बननेपर भी उसकी रक्षा का प्रयत्न होना चाहिये। खान पान की शुद्धता स्वच्छता आदि के नियम तक भी पालन किये जायँ। सामूहिक भोजों में मत्स्य मास अडा शराव आदि पदार्थो की मनाई है। हा [illegible] हर जाति हर वर्ग का सत्यसमाजी आसकता है इतनी ही बात [illegible] जातिपाति के कारण किसीसे परहेज न किया जायगा। व्यक्तिगत [illegible]प में जहा पर खाने जाना हो और जिनको बुलाना हो उनके विषय में अपना सम्बन्ध, नैतिक आचरण स्वच्छता आदि बातो का विचार किया ही जायगा। इसीप्रकार विवाह में जाति पाति का विचार न करके भी जिन सोलह बातो का विचार सत्यसमाज ने बताया है उनका विचार [illegible]ने पर कोई अडचन नही रहजाती।

सदाचार सत्सग वय भोजन एक विचार।
सहचजीविका स्वास्थ्य धन शिक्षण शिष्टाचार॥
सह भाषा सौन्दर्य गृह, पथ कर्मठता चाह।
जहा रहे अनुकूल ये करना वहा विवाह॥

इस प्रकार जैनो की सस्कृति में जो अच्छी बाते है उनमें कहीं बाधा नहीं है।